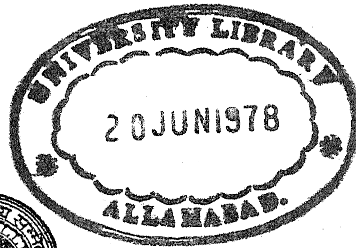
हिन्दी पर्यायों

का

भाषागत अध्ययन

(पंजाब विश्वविद्यालय की पी-एच. डी. उपाधि के लिए
स्वीकृत शोध-प्रबन्ध)

डॉ० बदरीनाथ कपूर





हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

प्रकाशक

मोहनलाल भट्ट
सचिव
प्रथम शासन निकाय
हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग

प्रथम संस्करण

११०० प्रतियाँ

प्रकाशन वर्ष

कार्तिक शक १८८७
नवम्बर १९६५

मूल्य

७.०० रुपये



मुद्रक

सम्मेलन मुद्रणालय
प्रयाग

पितृतुल्य
पद्मश्री रामचन्द्र वर्म्मा
और
गुरुवर
डॉ० हरदेव बाहरी
को
श्रद्धापूर्वक

प्रकाशकीय

हिन्दी पर्यायों का भाषागत अध्ययन का विवेच्य विषय अर्थ-विज्ञान है। हमारी मान्यता है कि कोई भाषा उसी स्थिति में सम्पन्न कही जा सकती है जब उस भाषा के एक एक शब्द का अर्थ निश्चित होता है। संस्कृत भाषा इस दृष्टि से पूर्णतया समृद्ध और सम्पन्न है। अक्षर विज्ञान की पद्धति केवल संस्कृत भाषा में ही प्राप्त है। इस पद्धति के अनुसार प्रत्येक मात्रा और वर्ण का अर्थ शब्द-संयम द्वारा किया जाता है। इसी पद्धति के अनुसार पक्षियों की बोली भी समझी जाती थी।

जहाँ तक हमारी जानकारी पर्यायों के सम्बन्ध में है अभी हिन्दी में ही नहीं बल्कि अँगरेज़ी भाषा में भी कोई काम नहीं हुआ है। अँगरेज़ी साहित्य में पर्याय कोश तो बहुत मिलते हैं, किन्तु पर्यायों का भाषागत अध्ययन अभी तक नहीं हुआ है। अभी हाल ही में प्रकाशित वेब्स्टर कृत 'सिनानिम डिस्क्रिमिनेटेड' की भूमिका में यह तथ्य स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है। इस दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक अपने विषय की सर्वप्रथम पुस्तक है और निश्चय ही इससे हिन्दी साहित्य की गौरव-वृद्धि होगी।

हमें आशा है कि विश्वविद्यालयों के भाषा-विज्ञान पाठ्यक्रम के लिए तथा भाषाशास्त्र पर अनुसन्धान करने वाले शोध छात्रों एवं भाषाशास्त्रियों के लिए यह ग्रन्थ उपयोगी सिद्ध होगा।

मोहनलाल भट्ट
सचिव
प्रथम शासन निकाय
हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग

नम्र निवेदन

श्रेष्ठ भाषा के दो लक्षण हैं। एक तो यह कि उसका शब्द-भण्डार समृद्ध होता है और दूसरे उसके प्रत्येक शब्द का अर्थ सुनिश्चित होता है। यदि शब्द-भण्डार समृद्ध नहीं होता तो भाषा सूक्ष्म विचारों, कोमल अनुभूतियों तथा अन्य सूक्ष्मताओं को व्यक्त नहीं कर पाती, और यदि शब्दों के अर्थ सुनिश्चित नहीं होते तो व्यवहार में अत्यधिक भ्रम की सम्भावना बनी रहती है। शब्द-भण्डार की दृष्टि से हिन्दी भाषा कितनी अपूर्ण है, इसका अनुभव उन सभी लोगों को अच्छी तरह से है जो विदेशी भाषाओं से हिन्दी में अनुवाद करते हैं या जो अँगरेज़ी में सोचते हैं और हिन्दी में लिखते हैं। अर्थ की दृष्टि से शब्दों का कितना शैथिल्य-पूर्ण प्रयोग होता है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमारा आज का साहित्य है।

अर्थों के अमर्यादित होने से तथा उनके शिथिलतापूर्ण प्रयोग से सबसे अधिक घाटे में रहते हैं—पर्याय शब्द। शब्दों का किया जानेवाला शैथिल्यपूर्ण प्रयोग उनकी विवक्षाओं का लोप करता है और इस प्रकार उन्हें भाषा के लिए भार बना देता है। जिन दो या अधिक शब्दों के अर्थों में कुछ भी अन्तर नहीं है, उनमें से एक के द्वारा अच्छी तरह काम चल सकता या चलाया जा सकता है। यह अत्यन्त आवश्यक है कि पर्यायों में लुप्त होती हुई विवक्षाओं को पुनरुज्जीवित करें और उनमें जो विवक्षाएँ अधिकारी लेखक प्रस्थापित करें, उन्हें अपनाएँ। यदि हम ऐसा नहीं करते और पर्यायों को समानार्थी मान कर रह जाते हैं तो हम बहुत-सी अर्थ-सम्पत्ति अपने अधिकार से खो बैठेंगे और इस प्रकार हमारी भाषा क्षीण होती जाएगी तथा हमारे दारिद्रय की सूचक होगी।

समय आ चुका है कि हम जानें कि 'शंका' का प्रयोग कहाँ करना चाहिए और 'सन्देह' तथा 'संशय' का कहाँ-कहाँ। 'धोखा' कहाँ उपयुक्त बैठता है और 'छल' कहाँ। 'उद्देश्य' का प्रयोग किन परिस्थितियों में उपयुक्त होगा और 'ध्येय' का किन परिस्थितियों में। यहाँ 'पर्याप्त' ही फबता है 'यथेष्ट' नहीं। यहाँ 'ताजा' ही जँचता है 'नया' नहीं। हिन्दी को यदि राज-भाषा के पद पर आसीन करना है और विश्व की उन्नत भाषाओं में उसका सिर ऊँचा करना है तो उसके पहले हमें अपने हर शब्द का आर्थी क्षेत्र मर्यादित कर लेना होगा, किसी प्रकार की शिथिलता और अव्यवस्था नहीं रहने देनी होगी। अँगरेज़ी भाषा के हर शब्द का

आर्थी क्षेत्र मर्यादित है, इसी लिए वह आज अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार की भाषा बनी हुई है।

पर्याय भाषा की मूल्यवान निधि होते हैं। उनका अध्ययन यह प्रत्यक्ष करता है कि भाषा को प्रबल बनाने तथा उसे माँजने-सँवारने में उनका कितना अधिक हाथ है? पर्यायों का भाषिक दृष्टि से किया जानेवाला अध्ययन भी अपने में एक बहुत बड़ा काम है। हिन्दी पर्याय शब्दों की सूचियाँ बनाने का काम मध्य युग से ही आरम्भ हो गया था और उनमें होनेवाली विवक्षाओं के ज्ञापन का कार्य 'शब्द-साधना' (१९५५) से आरम्भ होता है। परन्तु हिन्दी पर्यायों पर व्यापक तथा वज्ञानिक दृष्टि से होनेवाला विवेचन सम्भवतः यही प्रबन्ध प्रथम प्रयास है।

भाषा विज्ञान के अन्य अंगों के सम्बन्ध में भले ही अनुसन्धान कार्य द्रुत गति से हो रहा हो, परन्तु अर्थ-विज्ञान के क्षेत्र में वस्तुतः अभी बहुत कम कार्य हुआ है। यह क्षेत्र बहुत कुछ पिछड़-सा गया है। भाषा विज्ञान का यह क्षेत्र भी अत्यन्त पुष्ट होना चाहिए। प्रस्तुत प्रबन्ध इसी दिशा में एक छोटा-सा प्रयत्न समझा जा सकता है।

प्रस्तुत प्रबन्ध की रूप-रेखा

पहला अध्याय विषय प्रवेश है। इसमें पर्याय सम्बन्धी दो प्रमुख प्रश्नों को उठाया गया है। पहला प्रश्न है—पर्याय की परिभाषा क्या है? और दूसरा प्रश्न है—पर्यायों की क्या उपादेयता है? हिन्दी पर्यायों की पर्यायवाचकता नामकदूसरे अध्याय में कोटियाँ बनायी गयी हैं। तीसरे अध्याय में हिन्दी पर्यायों के उद्भव और विकास पर चिन्तन किया है। चौथे अध्याय में यह जानकारी प्राप्त की गयी है कि व्याकरणगत विभिन्न भेदों में किन-किन स्रोतों के शब्द आए हैं। पाँचवाँ अध्याय 'कार्यक्षेत्र और गतिविधि' है, जिसमें यह देखा गया है कि पर्यायों का मुख्यतः क्षेत्र ललित साहित्य है। साथ ही इस अध्याय में विभिन्न कालों में पर्यायों के प्रयोग के आधार पर सामान्य निष्कर्ष निकाले गए हैं। छठे अध्याय में देखा गया है कि पर्यायों की 'परिणति' क्या होगी। सातवें अध्याय में पर्यायों के विवक्षागत अन्तरों के प्रस्थापन सम्बन्धी मुख्य साधनों पर विचार किया गया है। और आठवें तथा अन्तिम प्रकरण में यह विचार किया गया है कि जब पर्यायवाचकता का आधार अर्थ है तब वाक्य, वाक्यांश, मुहावरे तथा कहावतें भी पर्यायवाचक हो सकती हैं।

प्रबन्ध की उक्त रूप-रेखा का प्रस्तुतिकरण बिलकुल नया और निजी है। पर्यायों पर इस प्रकार किसी अन्य भाषा में ऐसा विवेचन कदाचित् ही हुआ हो। किसी भारतीय भाषा की या अँगरेज़ी भाषा की ऐसी किसी पुस्तक का पता देशीय तथा विदेशीय प्रमुख पुस्तकालय नहीं दे सके, जिसमें पर्यायों पर भाषिक दृष्टि से विचार

हुआ हो। अँगरेज़ी में पर्यायवाची कोश कुछ अवश्य उपलब्ध हैं, जिनमें पर्यायों के अन्तरों पर प्रकाश डाला गया है। हिन्दी में इस तरह का एक ही कोश 'शब्द-साधना' के नाम से बना है।

विवशताएँ

सबसे बड़ी कठिनाई मेरे सामने शब्दों के सुन्दर तथा यथार्थ प्रयोग खोजने की रही है। प्राय: ऐसा भी हुआ है कि सारी की सारी पुस्तक पढ़नी पड़ी और उदाहरण एक-आध से अधिक नहीं मिला। 'विवक्षागत अन्तर' शीर्षक प्रकरण में पर्यायों के विवक्षागत अन्तर बतलाने के लिए जो कुछ उदाहरण प्राप्त हो सके हैं वे सैकड़ों लेखकों की कृतियों, कविताओं, कहानियों, उपन्यासों, निबन्धों आदि में से ढूँढ़ने पड़े हैं। शब्दों का बहुत सोच-विचार कर प्रयोग करने वाले लेखक हिन्दी में विरले ही हैं।

'कार्य-क्षेत्र और गतिविधि' नामक अध्याय में प्राय: सभी प्रमुख कवियों तथा लेखकों की कृतियों में से पर्यायों के एक से अधिक उदाहरण देना स्थानाभाव के कारण सम्भव नहीं हो सका। इसी अध्याय में जब काल-मान के अनुसार पर्यायों का विश्लेषण करना अभिप्रेत हुआ तो रामचरित मानस, बिहारी सतसई और कामायनी ग्रन्थों में से विशिष्ट पर्याय मालाओं के शब्दों तथा उनकी आवृत्तियों की गणना करनी पड़ी। 'मानस कोश' तथा 'प्रसाद काव्य कोश' के प्राप्त हो जाने पर 'बिहारी सतसई' के शब्दों का पूरा कोश तैयार करना पड़ा। इन गणनाओं तथा बिहारी कोश की तैयारी में ही एक वर्ष से भी अधिक समय लगाना पड़ा।

कृतज्ञता प्रकाश

इस ग्रन्थ के प्रणयन में मुझे गुरुवर डा० हरदेव बाहरी तथा पितृतुल्य पद्मश्री रामचन्द्र वर्म्मा से निरन्तर प्रेरणा मिलती रही है। इनके अतिरिक्त डा० ब्रजमोहन, श्री शिवनाथप्रसाद बेरी, बाबू दुर्गाप्रसाद खत्री और डा० धर्मपाल मैनी ने समय-समय पर जो सुझाव दिए हैं वे बहुमूल्य रहे। इन सब महानुभावों के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ।

—बदरीनाथ कपूर

विषय सूची

पहला अध्याय

विषय प्रवेश

'पर्याय' की परिभाषा

संस्कृत व्याकरण के अनुसार 'पर्याय' (परि+आय्+अ) का शब्दार्थ है—जो इधर भी जाता हो और उधर भी जाता हो अथवा जो चारों ओर जाता हो। कदाचित् इसी शब्दार्थ को ध्यान में रखकर मानियर विलियम्स ने अपनी संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी में पर्याय के लिए 'सिनानिम्' और 'कन्वरटिबुल टर्म' ये दो अँगरेजी पद सुझाये हैं। जहाँ तक अँगरेजी साहित्य में सिनानिम्[1] की परिभाषा का प्रश्न है उसके सम्बन्ध में विद्वानों के भिन्न भिन्न मत हैं जिनके विषय में इसी प्रकरण में आगे चल कर विचार किया जाएगा। 'कन्वरटिबुल टर्म' के लिए डा० रघुवीर ने अपनी 'काम्प्रिहेंसिव अँगरेजी हिन्दी डिक्शनरी' (१९५५) में 'परिवर्त्य' शब्द सुझाया है। परिवर्त्य शब्दों से अभिप्राय ऐसे शब्दों से होता है जिनका एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग होता हो। अब यदि सिद्धान्त रूप में पर्याय की यह परिभाषा करें कि "पर्याय वे शब्द हैं जिनका परिवर्तन एक दूसरे के स्थान पर होता हो" तो व्यवहारतया यह परिभाषा त्रुटिपूर्ण होगी। कारण स्पष्ट है कि इस परिभाषा के अनुसार जिन शब्दों का एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग नहीं हो सकता वे पर्याय नहीं हैं। उदाहरण के लिए दुःख और पीड़ा शब्द लीजिए जिन्हें संस्कृत तथा हिन्दी के प्रमुख पर्यायज्ञों ने पर्याय माना है।[2] परन्तु ये पर्याय परिवर्त्य नहीं हैं। हम कहते हैं—(क) वह सिर की पीड़ा से व्याकुल हो रहा है। अथवा (ख) उनकी टाँग में पीड़ा हो रही है। इन दोनों वाक्यों में 'पीड़ा' के स्थान पर 'दुःख' परिवर्त्य नहीं है। इसी प्रकार हम कहते हैं—(क) मुझे इस बात का दुःख है कि आप समय

---

१. पर्याय का तदर्थी अँगरेजी शब्द।

२. अमरकोश, प्रथम कांड ९वाँ वर्गांक ३रा श्लोक
भोलानाथ तिवारी, बृहत् पर्यायवाची कोश, पृ० १७८ (ज ५०)
रामचन्द्र वर्मा, शब्द-साधना, पृ० १३७

पर उत्तर नहीं देते। अथवा (ख) यह कन्या दुःखों में पली है। यहाँ इन दोनों **वाक्यों में 'दुःख'** शब्द के लिए 'पीड़ा' परिवर्त्य नहीं है।

परिवर्त्य होनेवाले पर्याय शब्द ऐसे भी हो सकते हैं जिनके परिवर्तन से वाक्यार्थ में कुछ भी अन्तर नहीं पड़ता और कुछ ऐसे भी हो सकते हैं जिनके परिवर्तन से वाक्यार्थ में कुछ या बहुत भिन्नता आ जाती है। 'उसने भोजन बनाया' और 'उसने खाना बनाया' वाक्यों में 'भोजन' और 'खाना' का परस्पर प्ररिवर्तन करने से वाक्यार्थ में कुछ भी भिन्नता नहीं आतीं। परन्तु 'वह देख रहा था' और 'वह ताक रहा था' वाक्यों में 'देखना' और 'ताकना' क्रियाओं के एक दूसरे के स्थान पर परिवर्तन किये जाने पर वाक्यार्थ में कुछ भिन्नता आ जाती है। साधारणतया 'देखना' और 'ताकना' क्रियाओं का एक दूसरे के स्थान पर लोग परिवर्तन करते भी हैं, परन्तु अधिक सतर्क लेखक 'देखना' के स्थान पर 'ताकना' का या 'ताकना' के स्थान पर 'देखना' का प्रयोग करना उचित नहीं समझते। 'खाना' और 'भोजन' को जिस प्रकार हम परिवर्त्य शब्द मान लेते हैं, उस प्रकार 'ताकना' और 'देखना' शब्दों को परिवर्त्य नहीं माना जा सकता, जब कि 'बृहत् पर्यायवाची कोश', 'हिन्दी पर्यायवाची कोश', 'शब्द-साधना' में ये पर्याय माने गये हैं। ऐसे शब्द कुछ अवस्थाओं में परिवर्त्य नहीं होते। तब ऐसे शब्दों को पर्याय कहा जाय या नहीं?

डा० भोलानाथ तिवारी ने 'बृहत् पर्यायवाची कोश' में "यह पुस्तक" शीर्षक के अन्तर्गत 'राधारमण' और 'कंस निकन्दन' पर्यायों पर विचार करते हुए लिखा है कि प्रयोग की दृष्टि से दोनों का एक स्थान पर प्रयोग (लेखक का अभिप्राय यहाँ एक दूसरे के परिवर्तन से ही है) नहीं हो सकता। इसी प्रकार अन्य शब्दों के सम्बन्ध में भी देखा जा सकता है।[1] अर्थात् तिवारी जी का आशय यह है कि पर्याय परिवर्त्य होते ही नहीं। जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं कि कुछ पर्याय परिवर्त्य होते भी हैं और कुछ परिवर्त्य नहीं भी होतें। इसके अतिरिक्त कुछ पर्याय ऐसे भी होते हैं जो कुछ अवस्थाओं में तो परिवर्त्य होते हैं और कुंछ अवस्थाओं में परिवर्त्य नहीं होते। तिवारी जी की यह आंशिक परिभाषा है। वस्तुतः यह अर्ध सत्य द्योतित करती है।

संस्कृत विद्वानों के मत

जब हम संस्कृत विद्वानों की शरण में जाते हैं तब हमें उनकी अनेक विशिष्ट

---

१. भोलानाथ तिवारी, बृहत् पर्यायवाची कोश पृ० ७; "यह पुस्तक" के अन्तर्गत।

परिभाषाएँ मिलती हैं। इनमें से एक परिभाषा है—पर्याय शब्दानाम् सह प्रयोगो नास्तिः। अर्थात् पर्याय शब्दों का एक साथ प्रयोग नहीं होता। सिद्धान्त रूप में यह कोई परिभाषा नहीं है। यह तो उसका नहिक या नकारात्मक पक्ष है। यदि हम यह मान भी लें कि पर्यायों का साथ साथ प्रयोग नहीं भी होता तो भी हमारे सामने उनका कोई स्पष्ट स्वरूप नहीं आता। इसके अतिरिक्त कुछ अवसरों पर पर्याय शब्दों का प्रयोग एक साथ देखने में भी आता है; जैसे :--

गिरि पहार पब्बै गहि पेलहि।
बिरखि उपारि झारि मुख मेलहिं॥[१] —जायसी

यहाँ 'गिरि', 'पहार', और 'पब्बै' पर्याय एक साथ प्रयुक्त हुए हैं। तुलसीदास के 'रामचरित मानस' के निम्न दोहे में 'जलधि' के ९ पर्याय प्रयुक्त हुए हैं—

बाँध्यो जलनिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस।
सत्य तोयनिधि पंकनिधि उदधि पयोधि नदीस॥[२] —तुलसीदास

साधारण बोल-चाल में पर्यायों का जो साथ साथ प्रयोग होता है वह और भी विचारणीय है। 'खोजना' और 'ढूँढ़ना' क्रियाएँ और उनसे बननेवाली भाववाचक संज्ञाएँ भी पर्याय हैं। निम्न वाक्य में 'खोज' और 'ढूँढ़' पर्यायवाचक भाववाचक संज्ञाओं का प्रयोग साथ साथ हुआ है।

"अपने आप को महत्व देने के लिए ही वह अपनी मालकिन को असाधारणता देना चाहती है पर इसके लिए भी प्रमाण की खोज-ढूँढ़ आवश्यक हो उठती है।[३]
—महादेवी वर्मा

ऐसे ही कुछ और प्रयोग देखिए--
"कोई बाघ-शेर तो है नहीं जो खा जाएगा।"[४] —अमरकान्त

"मगर इन सब चीजों को सिपहसालार हमेशा एक आड़ी-तिरछी नजर से देखाता है।"[५] —आनन्दप्रकाश जैन

---

१. पद्मावत (सं० वासुदेवशरण अग्रवाल) प्रथम संस्करण, पृष्ठ ४५।
२. रामचरितमानस (तुलसीदास) गीताप्रस संस्करण, ६-५-०
३. स्मृति की रेखाएँ (षष्ठम् संस्करण) पृ० १४
४. "मराल" मार्च ६२ पृ० १५
५. पलकों की ढाल पृ० १२६

निम्नलिखित पर्याय शब्द तो प्रायः साथ साथ प्रयुक्त होते देखे जाते हैं।

उलटना	पलटना	लड़का	बाला
धन	दौलत	लेना	पावना
नौकर	चाकर	सखी	सहेली
मारना	पीटना	सेवा	सुश्रूषा

आदि आदि

'बृहत् संस्कृताभिधान वाचस्पत्य' में पर्याय की परिभाषा इस प्रकार दी गई है– अनुक्रमे प्रकारे अवसरे मेदिनि निर्माणे द्रव्यधर्म भेदे समानार्थ बोधक शब्दाः। अर्थात् अनुक्रम, प्रकार, अवसर, मेदिनि, रचना और द्रव्यधर्म के विचार से समान अर्थ-बोधक शब्द पर्याय हैं।

स्पष्ट है कि इस परिभाषा में अर्थ की समानता को शब्दों के पर्यायवाचक होने का आधार माना गया है। दो चीजों में समानता कितनी और कहाँ तक होती है यह विज्ञान से भिन्न विद्याओं में जानना कठिन होता है। पर्याय शब्दों में भी होनेवाली समानता को मर्यादित करने के लिए वाचस्पत्य के विद्वान् सम्पादक ने उसे अनुक्रम, प्रकार, अवसर, मेदिनि, रचना और द्रव्यधर्म शब्दों से युक्त किया है। अनुक्रम का अर्थ है सिलसिला। मान लीजिए कि दो शब्दों के अर्थ समान हैं परन्तु उनका अनुक्रम या सिलसिला समान नहीं है तो वे परिभाषाकार की दृष्टि से पर्याय नहीं होंगे। 'घर' और 'मकान' शब्द लीजिए। ये दोनों शब्द समान अर्थ-वाले माने जा सकते हैं। परन्तु एक यदि उद्देश्य के रूप में आया है और दूसरा विधेय के रूप में तो यह दोनों पर्याय नहीं होंगे। जैसे––(क) मकान अच्छा बना है। और (ख) मोहन घर में रहता है। यहाँ 'मकान' और 'घर' पर्याय नहीं होंगे।

'प्रकार' से अभिप्राय शब्द-भेद से है। 'सुन्दर' और 'रूपवान्' शब्दों में जिस प्रकार अर्थगत समानता है उसी प्रकार 'सुन्दर' और 'रूप' में भी कुछ न कुछ अर्थगत समानता तो है ही। समान शब्द-भेद आवश्यक मान कर विभिन्न शब्द-भेदों के शब्दों में अर्थगत समानता दृष्टिगोचर होने पर भी उन्हें पर्याय मानने में यहाँ बाधा उपस्थित की गई है।

'अवसर' अर्थात् प्रसंग तथा 'मेदिनि' अर्थात् स्थान भी समान होना चाहिए। एक शब्द कई प्रसंगों या स्थानों में प्रयुक्त होता है, परन्तु दूसरा शब्द जिसका अर्थ समान है वह एक प्रसंग या स्थान में प्रयुक्त होता है। तो जिस प्रसंग या स्थान में दोनों शब्द प्रयुक्त होते हैं उसी के विचार से वे पर्याय होंगे। 'हवा' और 'वायु' समान अर्थवाले शब्द हैं। हवा का प्रयोग कुछ विशिष्ट प्रसंगों में भी होता है।

जैसे—(क) वे हवा बताने लगे। (ख) हवा हो गये। (ग) अब उन्हें हवा खाने दो। (घ) ज़माने की हवा बदल रही है। आदि आदि। इन प्रसंगों में वायु और 'हवा' पर्याय नहीं हैं।

'समान द्रव्यधर्म' से अभिप्राय यह है कि उनके समान अर्थ एक ही शब्द-शक्ति से निकलते हों। एक शब्द का अभिधात्मक अर्थ यदि दूसरे शब्द के लाक्षणिक या व्यंजनात्मक अर्थ के समान भी है तब भी वे शब्द पर्याय नहीं होंगे। पर्यायों का एक ही शब्द-शक्ति से समान अर्थ निकलना आवश्यक है।

'शब्दार्थ चिन्तामणि' में पर्याय की दो परिभाषाएँ की गई हैं। पहली परिभाषा है—क्रमेणैकार्थवाचकः शब्दाः। अर्थात् क्रम के विचार से जो शब्द एक ही अर्थ के वाचक हों वे पर्याय हैं। 'क्रम' से अभिप्राय वाक्य में शब्द के होनेवाले स्थान से है। अर्थात् पर्याय वे एकार्थ शब्द होते हैं जो दोनों उद्देश्य हों या दोनों विधेय हों, दोनों संज्ञाएँ हों या दोनों सर्वनाम हों, दोनों विशेषण हों या क्रियाएँ अथवा अव्यय हों। इस प्रकार परिभाषा का रूप हुआ कि एक अर्थवाली संज्ञाएँ, सर्वनाम, क्रियाएँ, विशेषण या अव्यय शब्द पर्याय होते हैं। स्पष्ट है कि संज्ञा शब्द का सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, अव्यय आदि अथवा किसी एक शब्द-भेद के शब्द का किसी दूसरे शब्द-भेद का शब्द पर्याय नहीं हो सकता। दूसरे एक शब्द भेदवाले शब्दों का पर्याय होने के लिए एकार्थवाचक होना भी आवश्यक है। सच पूछा जाए तो ऐसे बहुत कम शब्द मिलेंगे जिनमें अर्थगत विभिन्नता होती ही नहीं। जिन शब्दों के अर्थों में थोड़ी बहुत या नाम-मात्र के लिए भी अर्थगत विभिन्नता होती है वस्तुतः वे भी एकार्थवाचक नहीं कहे जा सकते।

'शब्दार्थ चिंतामणि' में जो दूसरी परिभाषा दी गई है वह उक्त परिभाषा से बहुत अधिक आगे बढ़ी हुई तथा विशद है।

'सम्बन्धस्तेन सहतत् पर्यायः यथा समानकुलभावचदानादानतथैवच'। अर्थात् सम्बन्ध के विचार से पर्याय वे हैं (क) जिनका समान कुल हो, (ख) जिनका समान भाव हो, और (ग) जिनका आदान-प्रदान भी होता हो। कुल से अभिप्राय यहाँ शब्द-भेद से, भाव से अभिप्राय अर्थ से और दान-आदान से अभिप्राय परिवर्त्यता से है।

आधुनिक विद्वानों के मत

यद्यपि हिन्दी कोशकारों तथा भाषाविदों ने 'पर्याय' शब्द की परिभाषा वाचस्पत्य बृहत् अभिधान और शब्दार्थ चिंतामणि की परिभाषाओं के आधार पर 'समान

अर्थवाचक शब्दों',[1] या 'एकार्थवाचक शब्दों'[2] पर जोर दिया है परन्तु आधुनिक पश्चिमी कोशकारों तथा पर्यायज्ञों ने 'समान अर्थ' को--पर्यायों के इस आधार को शिथिल समझा है। डा० हरदेव बाहरी ने इस सम्बन्ध में अपने अँगरेजी प्रबन्ध में जो विचार प्रकट किये हैं वे भी आधुनिक पश्चिमी विद्वानों के मतों के अधिक निकट पड़ते हैं।

'पर्याय' का अँगरेजी तदर्थी शब्द है सिनानिम्। सिन् का अर्थ है एक-सा, और निम् का अर्थ है नाम। इस प्रकार सिनानिम् का अर्थ हुआ 'एकसा नाम'। अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों में जानसन, क्रेब, टसलर, पियोजी, आदि विद्वानों ने पर्याय शब्दों को एक से (सेम,) अनुरूप (सिमिलर) मिलते-जुलते (रिसेम्बलिंग) सदृश्य (एलाईक) आदि अर्थोंवाले शब्द कहा, परन्तु बीसवीं शताब्दी के विद्वानों ने जो परिभाषाएँ दी हैं वे उक्त परिभाषाओं की अपेक्षा अधिक उपयुक्त हैं।

कन्साईज़ आक्सफोर्ड डिक्शनरी में सिनानिम् की परिभाषा इस प्रकार दी हुई है—

(एक ही भाषाके) एक से सामान्य भाववाले दो या अधिक शब्दों में से हर एक शब्द दूसरे का पर्याय होता है, परन्तु फिर भी इनमें एक या अनेक ऐसे अर्थ होते हैं जो परस्पर विभिन्न होते हैं अथवा इनमें भिन्न भिन्न प्रसंगों के लिए उपयुक्त भिन्न-भिन्न अर्थ-छटाएँ होती हैं।[3]

यहाँ पर्याय की परिभाषा 'दी सेम जेनरल सेंस' पर आधारित है। 'जेनरल' के अनेक अर्थ हैं परन्तु यहाँ अभिप्राय है 'जो सामान्यतः हर जगह लागू होता हो।' शब्द में कई विवक्षाएँ होती हैं, सभी हर जगह लागू नहीं होतीं परन्तु जितना अर्थ प्रायः लागू होता हो वह सामान्य (जेनरल) है। इस प्रकार 'जेनरल सेंस' से अभिप्राय शब्द के उस या उतने अर्थ से है जो सब जगह लागू होता हो। इस प्रकार

१—२. समान अर्थवाचक शब्द या एकार्थवाचक शब्द सम्बन्धी परिभाषाएँ निम्न ग्रन्थों में दी गई हैं:—

(१) हिन्दी शब्द सागर, (२) भाषा शब्दकोश, (३) बृहत् हिन्दी कोश, (४) शब्द-साधना (रामचन्द्र वर्म्मा)।

३. "आइदर आफ़ एनी टू आर मोर वर्ड्स (इन दी सेम लैंग्वेज) हैविंग दी सेम जेनरल सेंस बट पोसेसिंग ईच अदर आफ़ दैम मीनिंग विच आर नाट शेयरड बाई अदर आर अदर्स आर हैविंग डिफ़रेंट शेड्स आफ़ मीनिंग एप्परोपरीएट टु दी डिफ़रेंट कान्टेक्स्ट।"—आक्सफ़ोर्ड कंसाईज़ डिक्शनरी।

जिन शब्दों के विभिन्न प्रसंगों में एक से लागू होनेवाले अर्थ समान हों वे पर्याय हैं।

यह परिभाषा व्यावहारिक नहीं है क्योंकि हर शब्द के सम्बन्ध में यह बतलाना कठिन है कि शब्द का कितना अर्थ हर जगह लागू होता है। उदाहरण के लिए बहु प्रचलित तथा सरल-शब्द 'सुन्दर' लीजिए। दो ही प्रयोग देखिए—

(१) लड़की सुन्दर है।

(२) बात सुन्दर है।

यह बताना सचमुच असम्भव है कि उक्त दोनों वाक्यों में 'सुन्दर' का कितना अर्थ सामान्य है।

'वेबस्टर्स सिनानिम् डिक्शनरी' के प्रणेता ने सिनानिम् की परिभाषा उक्त कोश में इस प्रकार की है।

"इस कोश (बेबस्टर्स सिनानिम् डिक्शनरी) में पर्याय शब्द सदा अँगरेजी भाषा के उन दो या अधिक शब्दों के लिए प्रयुक्त होगा जिनके एक से या लगभग एक से सारभूत अर्थ हों।[1]

उक्त सिनानिम् डिक्शनरी की भूमिका के अन्तर्गत सारभूत अर्थ और अर्थ के बीच में रेखा खींचने का जो प्रयास किया गया है वह विचारणीय है। "सारभूत अर्थों के एक-से होने से यहाँ अर्थों के एक से होने से अभिप्राय नहीं है क्योंकि कुछ शब्दों में विवक्षाएँ तो एक सी हो सकती हैं लेकिन फिर भी उन्हें पर्याय नहीं कहा जा सकता। यहाँ सारभूत अर्थ का एक-सा होना बहुत कुछ व्याप्त्यार्थ[2] जैसा है; जिसे हम अयथोचित रूप से; इनेडिक्वेटिली (inadequately) ऐसा अर्थ कह सकते हैं, जिसके अन्तर्गत सभी महत्त्वपूर्ण विवक्षाएँ तो आ जाती हैं फिर भी जिसे हम ठीक तरह से ऐसा अर्थ कह सकते हैं जो उसकी परिभाषा से व्यक्त होता है। व्याप्त्यार्थ को शब्द की विवक्षाओं के सारांश के अतिरिक्त अपना शब्द-भेद तथा अर्थ में निहित सम्बन्धित विचारों को भी सूचित करना होगा।

"पर्यायों की सन्तोषजनक कसौटी है—व्याप्त्यार्थ में अनुरूपता। यह अनुरूपता क्वचित् इतनी पूर्ण होती है कि शब्दों को एक अर्थवाले कहा जा सके, फिर

---

१. ए सिनानिम इन दिस डिक्शनरी विल आलवेज मीन वन आफ़ दी टू आर मोर वर्ड्स इन दी इंग्लिश लैंग्वेज विच हैव सेम आर नीयरली दी सेम मीनिंग।
—वेब्स्टर्स डिक्शनरी आफ़ सिनानिम्स; भूमिका पृ० २७।

२. डेनोटेशन के लिए डा० रघुवीर द्वारा सुझाया हुआ शब्द।

भी यह इतनी स्पष्ट है कि एक सीमा तक सरलतापूर्वक दो या अधिक शब्दों को पर्याय स्वीकार किया जा सकता है।"[१]

व्यवहार में हम देखते हैं कि जिन दो या अधिक शब्दों के अर्थ एक परिभाषा द्वारा बेबस्टर्स सिनानिम् कोश में व्यक्त किये जा सके हैं उन्हें पर्याय माना गया है। ऐसी परिभाषा सम्बन्धित पर्यायों की सब विवक्षाओं को व्यक्त नहीं करती, तो भी जितना अर्थ व्यक्त करती है उतना वे सभी शब्द व्यक्त करते हैं, उसके अतिरिक्त भले ही व्यक्त करते हों; जैसे—

एविडेंट, मैनिफ़ेस्ट, पेटेंट, डिस्टिंक्ट, आबिविअस, एपेरेंट, पेलपेबल, प्लेन, क्लीयर कम इन टू कम्पैरेज़न वेन दे मीन रैडिली परसीव्ड आर एपरिहेंडिड।[२]

फ़ाप, डेंडी, ब्यू, काक्सकाम्ब, एक्सक्युज़ाईट, एलिगेंट, ड्यूट, मैकरोनी, बक, स्पार्क, स्वेल, नाब, टाफ़, कम इन टू कम्पैरिज़न ऐस डिनोटिंग ए परसन हू इज़ कांसपिअसली फ़ैशनेबुल आर एलिगेंट इन ड्रेस आर मैनर्स।[३]

हैलदी, साऊण्ड, होलसम, रबस्ट, हेल, वेल, एग्री इन मीनिंग हैविंग आर मैनि-फैसटिंग हैल्थ आफ माइण्ड आर बाडी आर इण्डीकेटिव आफ़ सच हैल्थ।[४]

हाईड, कन्सील, स्क्रीन, सीक्रीट, कैचो, बरी एग्री इन मीनिंग टू विद्ड्रा आर टू विद्होल्ड फ़ाम साईट आर आब्सरवेशन।[५]

उक्त उदाहरणों से ज्ञात होता है कि वेब्स्टर कोश में 'एसेंशल मीनिंग' अर्थात् सारभूत अर्थ से अभिप्राय वास्तव में शब्द के उस अर्थ से नहीं है जो परिभाषा द्वारा ठीक तरह से और पूरी तरह से व्यक्त किया गया हो बल्कि उस अर्थ से है जिसे लेखक ने स्वयं गढ़ छील कर ऐसा रूप दे दिया हो जिससे वह अन्य शब्दों (जिन्हें वह पर्याय मानता है) के अर्थ भी किसी प्रकार तथा अंशतः व्यक्त कर सकता हो। किसी शब्द की परिभाषा ऐसी होनी चाहिए जो उसके अर्थ को पूर्ण रूप से व्यक्त करती हो। खण्डशः परिभाषा को सारभूत अर्थ कहना मनमाना है। यही मुख्य कारण है कि वेब्स्टर को कुछ पर्यायों का सारभूत अर्थ लिखने के लिए खींचतान करनी पड़ी है। जैसे—

फ़ैशन, स्टाईल, मोड, वोग, फ़ेड, रेज, क्रेज़, डेरनीअर, क्री, क्राई, कम इन टू

---

१. वेब्स्टर्स डिक्शनरी आफ़ सिनानिम्स; इण्ट्रोडक्शन (पृ० २७)
२. वेब्स्टर्स डिक्शनरी आफ़ सिनानिम्स पृष्ठ ३०७
३. " " " " " ३५६
४. " " " " " ४०६
५. " " " " " ४११

कम्पैरिज़न एस डिनोटिंग ए वे आफ़ ड्रैसिंग आफ़ फरनिशिंग एण्ड डिकोरेटिंग रूम्स, आफ़ डांसिंग, आफ़ बिहेविंग, **आर दी लाईक** देट इज़ जेनरली एक्सेप्टिड एट ए गिवन टाईम बाई दोज़ हू विश टू फ़ालो दी ट्रैंड आर टू बी रिगार्डेड एस आपटूडेट।[1]

आयल, ग्रीज़, लुबरीकेट, एनायण्ट, इनअंकट, क्रीम, पोमेड, पोमेटम एग्री इन मीनिंग टू स्मीयर विद एन आयली, फ़ैट्टी आर सिमिलर सब्स्टेंस बट दे वैरी ग्रेटली इन देयर इम्पलीकेशन्स आफ़ दी सबस्टेंस यूज्ड एण्ड दि पर्पज़ फ़ार विच इट इज़ एप्लायड एण्ड इन देयर इडियोमैटिक एपलीकेशन्स।[2]

अन्य अनेक अवसरों पर वेब्स्टर द्वारा प्रस्तुत की हुई पर्यायों को पिरोने वाली सूत्र तुल्य परिभाषाएँ, जिसे वह सारभूत अर्थ कहता है बहुत ही सुन्दर तथा प्रिय और युक्ति-संगत लगती हैं।

फिर भी स्थिति यह है कि वेब्स्टर सदा इस बात पर सहमत नहीं हुआ कि पर्याय एक-से सारभूत अर्थवाले शब्द हैं बल्कि उसे यह भी कहना पड़ा कि 'सेम आर नियरली दी सेम एसेंशियल मीनिंग' वाले शब्द पर्याय हैं। 'नीयरली दी सेम' वास्तव में सही परिभाषा को शिथिल और कमजोर बना देता है।

'हिन्दी सिमेंटिक्स' में डा० हरदेव बाहरी ने पर्याय की जो परिभषा दी है वह इस प्रकार है :—

पर्याय लगभग एक से अर्थ या आन्तरिक भाववाले शब्द होते हैं परन्तु इनमें अर्थ की छाया का अन्तर भी रहता है।[3]

शब्द का आन्तरिक भाव उसका मर्म है, उसका सार है। आन्तरिक भाव भी वास्तव में सारभूत अर्थ ही है। यहाँ भी लगभग (आलमोस्ट) शब्द लगा हुआ है जो परिभाषा को यथातथ्य नहीं होने देता।

"पर्याय" कि जितनी ऊपर परिभाषाएँ उद्धृत की गई हैं वे सभी कुछ अवस्थाओं में सही उतरती हैं। परन्तु एक के बाद दूसरी परिभाषा की स्थापना अर्थ-विज्ञानी इसी लिए करते गए कि उन्हें पहलेवाली परिभाषाओं में कुछ न कुछ त्रुटि दृष्टिगत होती रही। इसका मुख्य कारण यही है कि भाषा जैसे नम्य और जीवित प्राणी को किसी कठोर नियम में जकड़ा नहीं जा सकता।

उक्त परिभाषा पर विचार करते करते एक विचार उत्पन्न हुआ है जिसे विद्वानों के सामने विचारार्थ उपस्थित कर रहा हूँ, जो मेरा अपना नहीं है

---

१. वेब्स्टर्स डिक्शनरी आफ़ सिनानिम्स पृष्ठ ३११

२. ,, ,, ,, ,, ,, ५८६

३. हिंदी सिमेंटिक्स, पृ० १२१

बल्कि जिसे मैंने उक्त अनेक विद्वानों की परिभाषाओं के आधार पर प्रस्तुत किया है :—

पर्याय एक ही शब्द-भेदवाले वे दो या अधिक शब्द हैं जिनका सामान्य अर्थ उनकी कम से कम एक मुख्य विवक्षा से युक्त हो।

समान शब्द-भेदवाले शब्दों का जितना अर्थ—पारिभाषित अर्थ—मिलता हो वह सामान्य अर्थ है। यह यदि उनकी एक एक या अधिक विवक्षाओं (यदि उनमें हैं तो) को अपने में समेट लेता है तो शब्द पर्याय होंगे।

कुछ उदाहरणों से यह परिभाषा अधिक स्पष्ट होगी। 'पीड़ा', 'कष्ट', 'दुःख', 'दर्द', 'वेदना', और 'विषाद' ये सात शब्द लीजिए। ये एक ही शब्द-भेद अर्थात् संज्ञा शब्द-भेद के हैं।

इनके अर्थ हैं :—

पीड़ा—शारीरिक दुःखद अनुभूति।

दुःख—मानसिक दुःखद अनुभूति।

दर्द—शारिक तथा हार्दिक[१] दुःखद अनुभूति।

कष्ट—शारीरिक, मानसिक तथा अभावसूचक[२] दुःखद अनुभूति।

वेदना—असह्य तथा घोर शारीरिक तथा हार्दिक दुःखद अनुभूति।

विषाद—मानसिक तथा हार्दिक दुःखद अनुभूति।

व्यथा—असह्य तथा घोर मानसिक दुःखद अनुभूति।

इन सबका सामान्य अर्थ है—दुःखद अनुभूति। अब जब हम 'पीड़ा', 'दर्द', 'कष्ट' और 'वेदना' को एक साथ लें तो हम देखते हैं कि उस अवस्था में सामान्य अर्थ होगा—शारीरिक दुःखद अनुभूति। "दुःखद अनुभूति" सामान्य अर्थ में शब्दों की मुख्य विवक्षाएँ सम्मिलित नहीं होतीं। जब कि "शारीरिक दुःखद अनुभूति" सामान्य अर्थ में पीड़ा, दर्द, कष्ट और वेदना की एक एक मुख्य विवक्षा सम्मिलित है। इस प्रकार मुख्य विवक्षायुक्त सामान्य अर्थ के आधार पर पीड़ा, कष्ट, दर्द और विषाद को पर्याय माना जा सकता है। इसी प्रकार 'मानसिक दुःखद अनुभूति' के आधार पर दुःख, कष्ट, व्यथा और विषाद को भी पर्याय माना जाएगा। 'कष्ट' दोनों पर्याय समूहों में आ जाएगा। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पीड़ा, दर्द, कष्ट, वेदना, विषाद पर्याय नहीं हैं बल्कि पीड़ा, दर्द, कष्ट, और वेदना पर्याय हैं तथा दुःख, कष्ट, व्यथा और विषाद पर्याय हैं।

---

१. **हरि मैं तो प्रेम दीवानी मेरा दर्द न जाने कोय।—मीराँ।**

२. **जैसे—उन्हें पैसे का कष्ट है।**

अभिमान, गर्व, फ़ख्र, घमण्ड, अहंकार, दम्भ शब्दों के अर्थ हैं—

अभिमान — दूसरों की अपेक्षा अपने आप को बड़ा समझने की अच्छी या बुरी धारणा।

गर्व, फ़ख्र— दूसरों की अपेक्षा अपने को बड़ा समझने की अच्छी या बुरी धारणा।

घमण्ड — दूसरों की अपेक्षा अपने को बड़ा समझने की बुरी धारणा।

अहंकार — अपने को दूसरों से बड़ा समझने की मिथ्या, बुरी तथा उद्दंडतापूर्ण धारणा।

दम्भ — अपने आप को दूसरों से बड़ा समझने की मिथ्या, क्रोध तथा उद्दंडतापूर्ण धारणा।

इन सबका मुख्य विवक्षा से संवलित सामान्य अर्थ होगा—दूसरों की अपेक्षा अपने को बड़ा समझने की बुरी धारणा।

हम 'फख्र', 'अभिमान' और 'गर्व' का एक अलग पर्याय समूह 'दूसरे से अपने को बड़ा समझने की अच्छी धारणा' के मुख्य विवक्षा संवलित सामान्य अर्थ के आधार पर भी बना सकते हैं।

'आनन्द' और 'सुख' इसलिए पर्याय नहीं हैं कि 'आनन्द' अनुकूल मानसिक अवस्था का सूचक है और 'सुख' अनुकूल हार्दिक अवस्था का। आनन्द के हर्ष, उल्लास, खुशी, प्रसन्नता आदि पर्याय होंगे और सुख के चैन, शान्ति आदि।

बृहत् पर्यायवाची कोश[1] में 'धूर्तता' शब्द के पर्याय दिए गए हैं—

कपट, कुटिलता, कुटिलपन, कुटिलाई, खोटाई, चतुराई, चाल, चालबाजी, चालाकी, छल, छलछन्द, छलछिद्र, छलाई, ठगपना, दगा, दगाबाजी, दुर्जनता, दुष्कर्म, दुष्टता, नटखटता, नटखटी, पाजीपन, पाजीपना, बदमाशी, मक्कारी, वंचकता, शरारत।

स्पष्ट है कि ये शब्द सदा कभी एक दूसरे के पर्याय नहीं हो सकते।

'धूर्तता' में तीन मुख्य विवक्षाएँ हैं—(क) धोखा देने की विवक्षा, (ख) अत्यधिक होशियारी की विवक्षा और (ग) परेशान करने की विवक्षा। उक्त तीनों विवक्षाओं के आधार पर पर्यायों के तीन वर्ग बनाए जा सकते हैं।

(१) धूर्तता, कपट, कुटिलाई, खोटाई, छल, छलाई, छलछन्द, छलछिद्र, ठगपना, मक्कारी, वंचकता।

(२) धूर्तता, चतुराई, चाल, चालबाजी, चालाकी।

---

१. डा० भोलानाथ तिवारी, बृहत् पर्यायवाची कोश (प्रथम संस्करण) पृ० १६९।

(३) धूर्तता, नटखटी, पाजीपन, बदमाशी, शरारत।

दुर्जनता, दुष्कर्म, दुष्टता की विवक्षाएँ धूर्तता की विवक्षाओं से भिन्न हैं इसलिए ये धूर्तता के पर्याय नहीं हैं। उक्त तीनों वर्गों में एक बात द्रष्टव्य है। वह यह कि कपट, चतुराई, नटखटी जो बृहत् पर्यायवाची कोश के अनुसार पर्याय कहे गए हैं वस्तुतः वे पर्याय हैं ही नहीं। इनके अर्थों में अत्यधिक विषमता है। इनकी विवक्षाएँ एक-सी होने का कोई प्रश्न ही नहीं है।

'शब्द-साधना'[1] में पाखण्ड के आटोप, आडम्बर, औपचारिकता, गर्वोक्ति, डींग, ढंग, ढकोसला, ढोंग, तड़क-भड़क, दिखावट, दुनियादारी, धर्मध्वजता, और शेखी पर्याय दिये गये हैं। यहाँ (क) पाखण्ड, बनावट, धर्मध्वजता, ढकोसला, ढोंग, (ख) आडम्बर, तड़क-भड़क, आटोप, (ग) डींग, शेखी, गर्वोक्ति और (घ) दिखावट, दुनियादारी, औपचारिकता, ये चार पर्याय वर्ग होने चाहिए।

गोपाल, गोवर्धनधारी, ब्रजमोहन, मुरलीमनोहर और श्याम भगवान कृष्ण के बोधक हैं। इनका अर्थ है—कृष्ण। इन सब की विवक्षाएँ अलग अलग हैं। प्रश्न उठता है कि ऐसे शब्दों को पर्याय माना जाए या नहीं। हमारे सभी देवी-देवताओं, पेड़-पौधों, धार्मिक और प्राकृतिक वस्तुओं के अनेक अनेक नाम हैं। उन सब के सम्बन्ध में भी यही प्रश्न उठता है। अर्थ सदा सांकेतिक होता है। इसलिए हम यह कह सकते हैं कि जब शब्द एक ही चीज का संकेत कर रहे हैं अर्थात् उनका बोध समान है तो उन्हें पर्याय मान लेना चाहिए। पर्याय की जो परिभाषा स्वीकार की गई है उसमें मुख्य विचार यही है कि भेद है लेकिन कुछ ऐसा अभेद भी है जिसके कारण हम शब्दों को पर्याय मानते हैं। यहाँ वस्तुतः अभेद एक दृष्टि से और भी जोरदार है कि शब्द एक ही वस्तु का बोध करा रहे हैं। यथार्थतः के विचार से हम कह सकते हैं कि एक ही शब्द-भेद वाले ऐसे दो या अधिक शब्द पर्याय हैं जो एक ही पदार्थ के बोधक हों अथवा जिनका सामान्य अर्थ निश्चित रूप से उनकी कम से कम एक प्रमुख विवक्षा से युक्त हो।

यहाँ एक और विचारणीय तथ्य की ओर निर्देश करना समीचीन होगा। वह यह कि जब हम अर्थ को प यिवाचकता का आधार बताते हैं तब पर्यायवाचकता शब्दों तक ही क्यों सीमित रखी जाए। वाक्य भी पर्यायवाचक हो सकते हैं, वाक्यांश भी पर्याय हो सकते हैं तथा मुहावरे और कहावतें भी पर्याय हो सकती हैं। इस प्रबन्ध के अन्तिम प्रकरण में हम इस सम्बन्ध में विशेष रूप से विचार करेंगे।

---

१. शब्द साधना, पृ० १७३

पर्यायों की उपादेयता

'पर्याय' सामान्य शब्दों की तरह मनुष्य के विचारों के आदान-प्रदान के साधन और वस्तुओं के बोधक तो हैं ही, इसके अतिरिक्त पर्यायों में कुछ और महत्त्वपूर्ण गुण या तत्त्व भी हैं जिनके कारण इनका महत्त्व बहुत अधिक आँका जा सकता है और इनकी उपादेयता विशेष रूप से मानी जा सकती है। जिन स्थितियों में इनकी उपादेयता विशेष रूप से परिलक्षित होती है उनका उल्लेख अवश्य संगत होगा। वे स्थितियाँ हैं--

१. वस्तु-विधान में पर्यायों का अवतरण।
२. भाव-विधान में पर्यायों का नियोजन।
३. भाषा की समृद्धि में सहयोग।
४ विचारशीलता में अभिवर्धन।
५. पद्य का संवरण।
६. प्रतिबोधन।
७. अन्य कारण।

१. वस्तु-विधान में पर्यायों का अवतरण

लेखन-कार्य के समय कोई विशिष्ट शब्द लिखने से पूर्व उस शब्द के अनेक पर्याय मानस-पटल पर कौंधने लगते हैं। जौहरी के संग्रहालय में पहुँचे हुए क्रेता की भाँति लेखक को रत्न रूपी पर्याय अपनी अपनी छविपूर्ण झलकियाँ देकर, मुग्ध करने की चेष्टा करते हैं। पसन्द और आवश्यकता अपनी अपनी होती है। जो जैसा रत्न चाहता है वैसा वह चयन कर लेता है, और ठीक भी है क्योंकि वह अपने चयन के लिए पूर्ण रूप से स्वतंत्र होता है।

लेखकों को भिन्न भिन्न श्रेणियों के लोगों के लिए रचनाएँ प्रस्तुत करनी पड़ती हैं। शिक्षित नवयुवकों को जिन शब्दों के द्वारा वह किसी विषय का ज्ञान कराता है,उन्हीं शब्दों के द्वारा बालकों को उस विषय का ज्ञान करा देना सम्भव नहीं होता। इसके लिए उसे क्लिष्ट शब्दों के स्थान पर उनके सरल पर्यायों की शरण लेनी पड़ती है। वय के अनुसार, विषयानुरूप विशिष्ट अवसरों पर भी पर्याय अभिव्यक्ति में विशेष रूप से सहायक होते हैं।

२. भाव-विधान में पर्यायों का नियोजन

प्राय: ऐसा होता है जब किसी एक वाक्य का कोई एक शब्द हटाकर उसके स्थान पर उसका कोई दूसरा पर्याय रख दिया जाता है तो कभी रचना में चार चाँद

लग जाते हैं और कभी उस रचना का सारा सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। कविवर रसलीन का एक दोहा है:—

अमी हलाहल मद भरे, सेत स्याम रतनार।
जियत मरत झुकि झुकि परत, जेहि चितवत इक बार॥

महान् शिल्पी द्वारा साकार किये हुए सौदर्न्य की हृदय दाद देता है, औरं उसके द्वारा किये हुए शब्द-नियोजन की स्तुति बुद्धि करती है। 'अमी' में जो उजलापन और जिलाने की समर्थता है वह उस के किसी पर्याय सुधा, पीयूष आदि में नहीं है। 'हलाहल' में जो श्यामता और मारने की शक्ति है वह विष या जहर में नहीं है, और 'मद' में रत्न जैसी जो लालिमा और माधुर्य है तथा उसके पान करने पर मधुप के डगमगाने का जो भाव निहित है वह शराब, दारू आदि उसके पर्यायों से अभिव्यक्त होता ही नहीं। और सबसे बढ़कर 'चितवने' में जिस अदा, नाज और प्यार से देखने का भाव है वह देखने, अवलोकने, निरखने आदि से व्यक्त नहीं हो सकता। 'चिते जानकी लखन तनु' में भी 'चितवना' का वैसा ही मधुर और विशिष्ट अर्थ है।

उक्त विवेचन से दो निष्कर्ष निकलते हैं कि उपयुक्त पर्याय शब्दों का चयन करने से एक तो भावों की अभिव्यक्ति सबल होती है और दूसरे भाषा का सौन्दर्य भी निखर उठता है।

मनुष्य के पास शक्ति, समय और साधन कम ही रहते हैं और उसके आगे काम का पहाड़ उनकी अपेक्षा बहुत बड़ा रहता है। उसकी योग्यता इसी बात में निहित होती है कि वह अपने सीमित साधनों द्वारा अपनी जीवन रूपी अल्प अवधि में पूरी शक्ति से ऐसी रचना प्रस्तुत करे जो भव्य भी हो और महत्तम भी। पर्याय शब्दों का ठीक ठीक चयन ही अत्यधिक मात्रा में इस उद्देश्य की सिद्धि में सहायक होता है।

३. भाषा की समृद्धि में सहयोग

जिन भाषाओं में शब्दों के जितने अधिक पर्याय होते हैं वे उतनी ही अधिक सम्पन्न होती हैं। कारण यह है कि पर्यायों के द्वारा ही किसी विशिष्ट भाव की सूक्ष्म से सूक्ष्मतर विशेषताएँ दिखलाई जा सकती हैं। यह तुलनात्मक विधि से अधिक स्पष्टतापूर्वक समझा जा सकता है। अँगरेजी के एरिया, टेरिटरी, फील्ड, ज़ोन, शफ़ीयर, डोमेन और रीजन इन सातों पर्यायों का बोध हम हिंदीवाले बहुधा 'क्षेत्र' और 'प्रदेश' इन दो शब्दों द्वारा कराते हैं। अँगरेजी के उक्त सातों

पर्यायों में से प्रत्येक शब्द में, अपनी अपनी कोई विशिष्ट विवक्षा भी है जो प्रयोगों में भासित होती है।

एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाएगी। जेम्स सी फ़र्नाल्ड ने अपनी पुस्तक सिनानिम्स एन्टानिम्स एण्ड प्रापोजीशन्स (नया संस्करण) के पृष्ठ ३३ पर 'एम्, एस्पीरेशन, डिसाइन, एनडेवर, गोल, आब्जेक्ट, पर्पज़ आदि (इन सब शब्दों को उक्त लेखक ने पर्याय माना है) का जो अद्भुत प्रयोग किया है वह दर्शनीय है—

वन हूज़ एम्स आर वर्दी, हूज़ एस्पीरेशन्स आर हाई, हूज़ डिज़ाइन्स आर वाइज़ एण्ड हूज़ पर्पेज़िज़ आर स्टेडफ़ास्ट मे होप टू रीच दी गोल आफ़ हिज़ एम्बीशन्स एण्ड विल शोअरली विन सम आब्जेक्ट वर्दी आफ़ ए लाइफ़स एन्डेवर।[1]

यह सच है कि उक्त वाक्य में पर्यायों के द्वारा ही एक भाव-लड़ी पिरोई जा सकी है और उसमें गहराई और सूक्ष्मता लाई जा सकी है। पर्यायों की इस प्रकार की बहुलता ही अँगरेजी भाषा की सम्पन्नता का प्रमाण और लक्षण है।

४. विचारशीलता का अभिवर्द्धन

पर्याय हमें प्रायः अपने अपने चयन के लिए जोर डालते हैं और कभी लुभाने और कभी बहकाने का भी प्रयत्न करते हैं। परन्तु सतर्क लेखक और पाठक उन्हें अपनी मानस-तुला पर तौलते हैं और तब कहीं जाकर किसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अमुक स्थान या अवसर पर यह शब्द फबेगा अथवा उसका अमुक पर्याय। इस प्रक्रिया से मनुष्य का मन एकाग्रचित्त होता है और वह गहराई में पैठने में प्रवृत्त होता है।

जब कोई पढ़ता है—'उस्ताद, मैं इस गाने की कसरत कर रही थी' अथवा 'वह गीत की दो चार लड़ियाँ गाती' तो उसे (यदि भाषा का कुछ ज्ञान है तो) विचार करना पड़ता है, क्या 'कसरत', और 'लड़ियाँ' का प्रयोग यहाँ उपयुक्त है अथवा उनके स्थान पर क्रमशः 'रियाज' और 'कड़ियाँ' का प्रयोग होना चाहिए था। जब हम किसी को कहते सुनते हैं कि 'अमुक व्यक्ति को फाँसी पर टाँगा गया' तब हमारे ध्यान में आता है कि किसी को टाँगा तो सूली पर जाता है, फाँसी पर तो लटकाया जाता है। 'टाँगना' और 'लटकाना' के भीतर जब घुसा जाता है, तब गौण रूप से ही सही हमारी विचार शक्ति का अभिवर्धन होता है और जब इस

---

१. इस बात का प्रयत्न किया गया था कि हिन्दी साहित्य से कोई ऐसा वाक्य ढूँढ़ कर उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया जाय परन्तु लेखक को कोई ऐसा वाक्य अभी तक नहीं मिला।

निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि "टाँगना" क्रिया में वस्तु के फँसाने, टिकाने या ठहराने की विवक्षा है और "लटकाना" में किसी चीज के बहुत से अंश को नीचे की ओर अधर में दूर तक पहुँचाने की विवक्षा है तो हमें अपनी विचारशीलता पर गर्व होता है।

पर्यायों पर विचार करते समय सदा दो या अधिक शब्दों को ध्यान में रखना पड़ता है। सदा उनमें सतर्क और सावधान होकर समता तथा विषमता देखते रहना पड़ता है। सतर्कता और सावधानता सदा विचारशीलता के परिवर्द्धन में सहायक होती हैं।

५. पद्य का संवरण

पद्य के क्षेत्र में पर्यायों का महत्त्व इतना अधिक है जिस का ठीक ठीक वर्णन शब्दों में हो सकना सम्भव नहीं है। पद्य में कभी चरणों की तुक मिलानी पड़ती है, कभी उनमें अनुप्रास की छटा दिखानी होती है, कभी मात्राओं का, कभी गणों का और कभी लय का ध्यान रखना पड़ता है। कवि को जिस चीज का बोध कराना होता है उसके लिए उसे ऐसा शब्द चुनना होता है, जिससे तुक मिले, अनुप्रास की छटा आए, मात्रा का क्रम न बिगड़े और लय का तारतम्य बना रहे। स्पष्ट है कि यदि शब्दों के पर्याय न हों तो पद्य का सौन्दर्य भी नष्ट हो जाए और साथ ही कवि अपने कौशल का प्रतिमान भी प्रस्तुत न कर सकें।

६. प्रतिबोधन

पढ़ते समय प्रायः ऐसे क्लिष्ट या नये शब्द भी हमारे सामने आते हैं जिनके अर्थों से हम परिचित नहीं होते। उस समय हम सहज में यह नहीं जान पाते कि ये किन चीजों या भावों आदि का बोध कराते हैं। उस समय हमें किसी से पूछना पड़ता है कि अश्व, शिखर, श्रान्ति या लेलिहान से लेखक का क्या तात्पर्य है। तब हमें उत्तर मिलता है कि लेखक का अश्व से घोड़े का, शिखर से चोटी का, श्रान्ति से थकावट का और लेलिहान से सर्प का अभिप्राय है। और हम इस या ऐसे उत्तर से सन्तुष्ट हो जाते हैं। क्यों ? इसी लिए कि पर्याय एक दूसरे का प्रतिनिधित्व या प्रतिबोधन भी करते हैं। बहुत सी अवस्थाओं में यदि शब्दों का उनके पर्यायों द्वारा प्रतिबोधन न कराया जाए तो बहुत उलझन और परेशानी होती है। 'अश्व' के सम्बन्ध में 'घोड़ा' या उसका कोई और पर्याय न होने पर या उनके पर्यायों का प्रयोग न करने पर कहना पड़ेगा कि यह चार टाँगोंवाला, तेज दौड़नेवाला, गाय के आकार का परन्तु बिना सींगोंवाला पालतू पशु है आदि। और भी कई गुण या

विशेषताएँ बतलानी पड़ेंगी और तब कहीं जाकर ठीक ठीक पशु का बोध होगा। परन्तु 'घोड़ा' शब्द कहने से वक्ता को अनेक प्रकार की बातें कहने से भी छुट्टी मिलेगी, उसका समय भी बचेगा और उसका अभिप्राय भी शीघ्रता से दूसरों की समझ में आ जाएगा।

इस तथ्य के विरोध में एक बात जो विशेष रूप से कही जा सकती है वह यह है कि पर्यायों में विवक्षागत अन्तर होता है तो ऐसी स्थिति में एक पर्याय दूसरे का प्रति-बोधन कैसे कर सकता है। प्रश्न तर्कसंगत है। इतना होने पर भी यदि हम विचार-पूर्वक देखें तो हमें प्रतीत होगा कि ऐसी अवस्थाओं में भी अर्थ आदि का स्पष्टीकरण करते समय पर्याय ही हमारे सहायक हुआ करते हैं। इनमें कुछ विशेषण आदि इस प्रकार जोड़ दिये जाते हैं जिनसे उनके अर्थों की व्याप्ति कुछ संकुचित या विस्तृत हो जाती है अथवा अर्थों में गहराई या हलकापन आ जाता है। 'संयोग' का पर्याय 'अवसर' है परन्तु विवक्षागत आशय की भिन्नता दिखलाने के लिए कहना पड़ता है—उपयुक्त और अनुकूल अवसर; 'वेदना' के लिए कहना पड़ता है—असह्य पीड़ा; 'मलना' के लिए कहना पड़ता है—हाथ से रगड़ना; 'सिहरन' के लिए कहना पड़ता है—हलका शारीरिक स्पन्दन; आदि आदि।

कोशकारों के लिए पर्याय तो वरदान स्वरूप होते हैं, क्योंकि पर्यायों की सहायता से वे लोग शब्दों का बोध अपने कोश में सहज में करा देते हैं।

७. अन्य कारण

पर्यायों के चुनाव के आधार पर मनुष्य की प्रवृत्ति, उसके स्वभाव, उसकी शिष्टता और संस्कृति का भी ज्ञान होता है। दो आदमी जो बात तो एक ही कहना चाहते हैं परन्तु उनके चुने हुए शब्दों से लोग अनुमान कर लेते हैं कि कौन कितना गम्भीर, कौन कितना शिक्षित और कितना सयाना है। एक व्यक्ति 'रण्डी' का प्रयोग करता है, दूसरा 'वेश्या' का और तीसरा 'नगरवधू' का। पहला साधारण कोटि का होगा, दूसरा कुछ सभ्य होगा और तीसरा संस्कृत रुचि का समझा जाएगा। 'काने' की अपेक्षा 'एकाक्ष', 'अन्धे' की अपेक्षा 'सूर' (सूरदास) कहनेवाला व्यक्ति अधिक विचारशील होगा इसमें सन्देह नहीं। 'जलाना' की जगह 'मंगलना', 'बन्द करना' की जगह 'बढ़ाना' का प्रयोग करनेवाला व्यक्ति भी समाज में सुविज्ञ समझा जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पर्याय हमारी भाषा की सम्पन्नता में भी सहायक होते हैं और हमारी रुचि भी परिष्कृत करते हैं।

दूसरा अध्याय

पर्यायवाचकता

परिभाषा का परिसीमन

'किसी एक चीज का संकेत करनेवाले अथवा मुख्य विवक्षा से युक्त सामान्य अर्थवाले शब्द पर्याय होते हैं' इसे पर्यायों की सार्विक (जेनरल) परिभाषा के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। किन्तु किसी विशिष्ट भाषा और उसके शब्दों की प्रवृत्ति के विचार से उक्त परिभाषा को भी मर्यादित करने तथा उस पर प्रतिबन्ध लगाने की आवश्यकता हो सकती है। उदाहरण के लिए हिन्दी भाषा के पर्याय शब्दों के प्रकार तथा प्रकृति का विचार करते हुए उक्त परिभाषा पर नीचे लिखे प्रतिबन्ध लगाने आवश्यक हैं।

१. पर्याय शब्द हिन्दी भाषा में प्रचलित होने चाहिए

हिन्दी एक सामान्य भाषा है। इसमें संस्कृत, बँगला, मराठी, अरबी, फारसी, अँगरेजी आदि के शब्दों के अतिरिक्त अपने तद्भव तथा देशज शब्द भी हैं। जो शब्द हिन्दी भाषा के अंग हो गये हैं वे उसके अपने हुए और जो उसके अंग नहीं हुए उनका हिन्दी शब्द-भण्डार में स्थान नहीं है। हिन्दी शब्द-भण्डार के शब्दों में ही पर्यायवाचकता खोजी जानी चाहिए और उन्हें पर्याय वाचक माना जाना चाहिए। जैसे—कन्ट्रोल (अँगरेजी) तथा नियन्त्रण (संस्कृत), जारी (अरबी) तथा प्रचलित (संस्कृत), बालिश्त (फारसी) तथा बित्ता (तद्भव), सराहनीय (बँगला) तथा प्रशंसनीय (संस्कृत), भेस (तद्भव) और वेष (संस्कृत), दुलार (देशज) तथा लाड़ (तद्भव) हिन्दी में प्रचलित हैं इसलिए ये पर्याय हैं। परन्तु हम देखते हैं कि हमारे शब्द-शास्त्री जब अँगरेजी शब्दों के लिए हिन्दी शब्द गढ़ते हैं तो उन्हें भी अँगरेजी शब्दों के हिन्दी पर्याय कहते हैं।[1] ऐसे शब्द परस्पर पर्याय नहीं माने जाएँगे। ऐसे शब्दों को तदर्थी कहना अधिक उपयुक्त होगा।

---

१. "पर्यायों की खोज" शीर्षक से १९५८-५९ में आल इण्डिया रेडियो दिल्ली से हर पखवाड़े जो कार्यक्रम होता था उसमें हमारे देश के प्रसिद्ध शब्दशास्त्री

२. पर्याय शब्द एक ही व्याकरणगत शब्द-भेदवाले होने चाहिए

मुख्य विवक्षा से युक्त सामान्य अर्थवाले दो संज्ञा शब्द, दो विशेषण शब्द, दो क्रिया शब्द या दो अव्यय शब्द ही पर्याय होंगे। संज्ञा शब्द का विशेषण, विशेषण शब्द का अव्यय, या अव्यय का क्रिया आदि शब्द पर्याय नहीं होगा। ऊँचा (विशेषण) और ऊँचाई (संज्ञा), उठना (क्रिया) और उठान (संज्ञा), फिर (अव्यय) और फिरना (क्रिया), खेलना (क्रिया) और खिलाड़ी (संज्ञा) पर्याय नहीं माने जाएँगे।

अकर्मक, सकर्मक और प्रेरणार्थक क्रियाएँ भी परस्पर पर्याय नहीं हो सकतीं। जलना, जलाना और जलवाना; खाना, खिलाना और खिलवाना; मरना, मारना और मरवाना; पढ़ना, पढ़ाना और पढ़वाना आदि क्रियाएँ परस्पर पर्याय नहीं हैं।

किसी संज्ञा का स्त्रीलिंग रूप अथवा स्त्रीलिंग अल्पार्थक रूप भी उस संज्ञा का पर्याय नहीं होगा। जैसे कवि और कवयित्री; घोड़ा और घोड़ी; युवा और युवती; नद और नदी; मटका और मटकी; फोड़ा और फुड़िया आदि आदि। स्वतन्त्र स्त्रीलिंग और पुंलिंग शब्द तो पर्याय होते ही हैं। जैसे—अस्तित्व और सत्ता, शब्द और आवाज, प्रबन्ध और व्यवस्था, यश और कीर्ति, स्वास्थ्य और तन्दुरुस्ती, मनुष्यता और मनुष्यत्व, मोटापा और मोटाई, गुरुत्व और गुरुता आदि पर्याय हैं।

• व्याकरणगत शब्द-भेद यदि पद-समूहों का समान रहता है तो वे पर्याय होंगे। जैसे—भिखमंगा और भीख माँगनेवाला; रीझना और मोहित होना; गत और बीता हुआ तथा पूर्वा पर और आगे-पीछे क्रमात् संज्ञा, क्रिया, विशेषण तथा अव्यय पर्याय हैं। कुछ और उदाहरण लीजिए:—

रटना	–	कंठस्थ करना
निकालना	–	बाहर करना
घटाना	–	कम करना
धोबी	–	कपड़े धोनेवाला
मोची	–	जूता सीनेवाला
भंगी	–	झाड़ू लगानेवाला
दो जानू	–	घुटनों के बल
बदौलत	–	कृपा से
		आदि आदि

अँगरेजी शब्दों के लिए जो हिन्दी शब्द गढ़ते थे उन्हें अँगरेजी शब्दों के पर्याय कहते थे।

परन्तु किसी शब्द का वाक्य या उपवाक्य पर्याय नहीं होगा क्योंकि उसका विशेषण आदि जैसा कुल-भेद नहीं होता। "थकना" का अर्थ है—परिश्रम करते करते इतना शिथिल होना कि फिर और परिश्रम न हो सके।[1] 'थकना' का उसकी यह परिभाषा पर्याय नहीं होगी क्योंकि थकना क्रिया है जब कि इस परिभाषा की क्रिया संज्ञा नहीं की जा सकती। कुछ और उदाहरण लीजिए।

दिवान्ध — जिसे दिन में दिखाई देता हो।[2]
बेपरवा — जिसे कोई परवा न हो।[3]
भाँवर — चारों ओर घूमना।[4]
भाईबन्द — एक ही वंश या गोत्र के लोग।[5]
लुढ़कना — नीचे-ऊपर चक्कर खाते हुए आगे या नीचे की ओर जाना।[6]

३. भेद-उपभेद के सूचक शब्द परस्पर पर्याय नहीं होते

अनेक जातिवाचक संज्ञाओं के भेद, उपभेद भी हुआ करते हैं। ऐसे भेद-उपभेद न तो परस्पर पर्याय होंगे और न उस मूल शब्द के ही पर्याय होंगे जिसके ये भेद-उपभेद हैं। "रस" के अद्भुत, करुण, भयानक, रौद्र, बीभत्स, वीर, शान्त, शृंगार और हास्य नौ भेद हैं। ये भेद न तो परस्पर पर्याय हैं और न "रस" शब्द के ही पर्याय हैं। कुछ और उदाहरण लीजिए :—

स्थायी भाव—उत्साह, क्रोध, जुगुप्सा, भय, रति, विस्मय, निर्वेद, शोक और हास।

विभाव—आलम्बन, उद्दीपन।

पाताल—अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, पाताल।

काव्य—दृश्य काव्य, श्रव्य काव्य।

रूपक—अंग, इहामृग, डिम, नाटक, प्रकरण, प्रहसन, भाण, वीथी, व्यायोग, और समवकार।

---

१. प्रामाणिक हिन्दी कोश (द्वितीय संस्करण) पृष्ठ ५७६
२. ,, ,, ,, ,, ,, ६०८
३. ,, ,, ,, ,, ,, ९४०
४. ,, ,, ,, ,, ,, ६९२
५. ,, ,, ,, ,, ,, ६९८
६. ,, ,, ,, ,, ,, ११३६

गुण—ओज, प्रसाद, माधुर्य।
आवास—महल, मकान, झोंपड़ी।

आदि आदि।

भेद, उपभेद बनाने का मुख्य आधार भिन्नता होता है, परन्तु पर्यायों का आधार एकता होता है।

४. व्याकरणगत समानाधिकरण शब्द भी परस्पर पर्याय नहीं होते

"राम का भाई लक्ष्मण भी उनके साथ वन को गया" वाक्य में "राम का भाई" "लक्ष्मण" का पर्याय नहीं है। "मैं ने चाचा राममोहन से कहा" में "चाचा" "राममोहन" का पर्याय नहीं है।

५. व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के अल्ल, नातेदारी, ओहदे आदि के सूचक शब्द भी पर्याय नहीं होते

जैसे—'जवाहरलाल' का न तो 'नेहरू' पर्याय है न 'प्रधान मंत्री' ही पर्याय है। एक ही आदमी को एक लड़का पिता कहता है और उसका चचेरा भाई उसी को चाचा कहता है। उस व्यक्ति के नाम का न तो 'पिता' ही पर्याय है और न 'चाचा' ही और न 'पिता' तथा 'चाचा' पर्याय हैं।

६. शब्दों के पर्याय उनके संक्षिप्त रूप नहीं होते

सुविधा या लाघव के विचार से अनेक शब्दों के संक्षिप्त या अर्धांश भी बना लिए जाते हैं। "प्रसोपा" वास्तव में 'प्रजा सोशिलिस्ट पार्टी' का संक्षिप्त रूप है और विजय (या कृष्ण) वस्तुतः 'विजय कृष्ण' का अर्ध रूप है। ऐसे संक्षिप्त या अर्ध रूप भी अपने मूल शब्द के पर्याय नहीं होंगे। वस्तुतः ऐसे शब्दों का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं होता। ऐसे शब्द रूप किसी अर्थ के नहीं बल्कि किसी शब्द के सूचक होते हैं। कुछ और उदाहरण लीजिए:—

मदनमोहन मालवीय	—	ममोमा
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय	—	का० वि० वि०
मुख्य सचिव	—	मु० स०
(डा०) रोशन लाल	—	डा० साहब
हरबंसलाल कानौडिया	—	कानौडिया जी
		आदि आदि

पर्याय शब्दों की कोटियाँ

डा० बाहरी ने हिन्दी सीमेंटिक्स[1] में पर्यायों की तीन कोटियों का निर्देश किया है :—

(क) पूर्ण पर्याय
(ख) आंशिक पर्याय
(ग) अनिश्चित पर्याय

पूर्ण पर्यायों से डाक्टर साहब का अभिप्राय ऐसे शब्दों से है जो पूर्णतः अनुरूप हों तथा प्रायः सभी प्रसंगों में एक दूसरे के स्थान पर परिवर्त्य हों; जैसे—वस्त्र और कपड़ा, भीरु और डरपोक, गोखा और झरोखा, वायु और पवन, निकट और समीप, छाया और छाँह, कैदी और बन्दी, कामदेव और मदन, चाची और काकी, शीत और सरदी आदि आदि।

"आंशिक पर्याय वे होते हैं जो कुछ प्रसंगों में समान होते हैं और कुछ प्रसंगों में समान नहीं होते हैं। जैसे—दिल, हृदय, मन और जी; घोर और अत्यन्त; बहुत और बड़ा; स्कूल और पाठशाला; रीति, रिवाज और चाल आदि।

"अनिश्चित पर्याय वे हैं जो या तो यथार्थतः विभिन्न होते हैं और शिथिलता-पूर्वक पर्यायों की तरह प्रयुक्त होते हैं अथवा प्रायः पर्याय होते हैं परन्तु विद्वान् उन्हें विभिन्न समझते हैं। जैसे—कुर्सी और चौकी, छुरी और चाकू, दया और कृपा, अन्वेषण, अनुसन्धान, गवेषणा और खोज; कलह और झगड़ा आदि।"[2]

पर्यायों की कोटियों का यह वर्गीकरण उपयुक्त नहीं जँचता क्योंकि जो पर्याय हैं अथवा जिन्हें हम पर्याय स्वीकार कर लेते हैं उन्हें पूर्ण भले ही मान लिया जाए परन्तु आंशिक या अनिश्चित नहीं माना जा सकता। उक्त सूचियों में कुर्सी और चौकी तथा छुरी और चाकू वस्तुतः पर्याय नहीं हैं। शेष पर्याय हैं क्योंकि उनके सामान्य अर्थ मुख्य विवक्षा से युक्त हैं।[3]

---

१. हिन्दी सीमेंटिक्स पृ० १२१

२. „ „ „ १२१

३. (क) कपड़ा और वस्त्र सूत, ऊन रेशम आदि के तन्तुओं से बुनी हुई रचनाओं के वाचक हैं।

(ख) भीरु और डरपोक में भयभीत होने तथा हिचकनेवाला होने की विवक्षा से युक्त सामान्य अर्थ है।

(ग) गोखा और झरोखा ये दोनों उस अवकाश के सूचक हैं जो दीवार, छत आदि में प्रकाश, वायु आदि के निमित्त छोड़ा जाता है।

वस्तुतः शब्दों के सामान्य अर्थ में होनेवाली विवक्षाओं में जो मेल या समता होती है, उसी के आधार पर पर्यायों की कोटियों स्थिर की जानी चाहिए। हम अपने साहित्य में से ऐसे पर्याय सहज में उद्धृत कर सकते हैं जिनके सामान्य अर्थ में

(घ) वायु और पवन ये दोनों पाँच तत्त्वों में से उस एक तत्त्व के सूचक हैं जो आकाश में व्याप्त रहता है।

(ङ) समीप और निकट इन दोनों अव्ययों में स्थान आदि के विचार से बहुत कम दूर होने का विवक्षायुक्त सामान्य अर्थ है।

(च) छाया और छाँह ये दोनों शब्द उस अन्धकार के सूचक हैं जो प्रकाश की किरणों के किसी चीज द्वारा बाधित होने पर उत्पन्न होता है।

(छ) कैदी और बन्दी उस अस्वतन्त्र व्यक्ति के सूचक हैं जो दूसरे के बन्धन में या बन्दीगृह में हो।

(ज) कामदेव और मदन ये दोनों शब्द पुराणों में वर्णित प्रेम के देवता के सूचक हैं।

(झ) काकी और चाची ये दोनों शब्द सम्बन्ध के विचार से पिता के छोटे भाई की स्त्री के सूचक हैं।

(ञ) शीत और सरदी उस वातावरणिक स्थिति के सूचक हैं जो प्रसम तापमान के घटने पर होती है।

(ट) दिल, हृदय, मन और जी ये सभी शब्द मनुष्य की सहज आन्तरिक चेतना के सूचक हैं।

(ठ) घोर, अत्यन्त, बहुत और बड़ा में मान-परिमाण में बढ़कर होने की विवक्षा है।

(ड) स्कूल और पाठशाला छोटे बच्चों की शिक्षण संस्था के सूचक हैं।

(ढ) रीति, रिवाज और चाल में किसी परम्परागत व्यवहार के चलन में होने की विवक्षा संवलित सामान्य अर्थ है।

(ण) दया और कृपा उस वृत्ति की सूचक हैं जो किसी की सहायता करने में अग्रसारित करती है।

(त) अन्वेषण, अनुसन्धान, गवेषणा और खोज में किसी खोई हुई वस्तु या नई बात का पता लगाने का सामान्य अर्थ है।

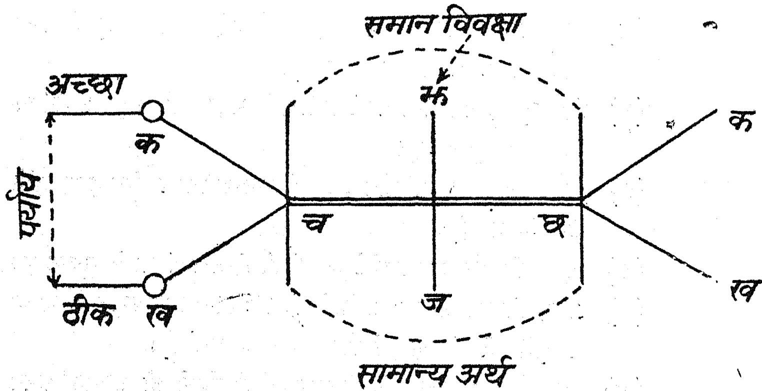
(थ) 'कलह' और 'झगड़ा' में नित्य की पारिवारिक तू-तू—मैं-मैं और कहा-सुनी का विवक्षा संवलित सामान्य अर्थ है।

(क) एक ही मुख्य विवक्षा
(ख) एक से अधिक विवक्षाएँ अथवा
(ग) सभी विवक्षाएँ
एक सी होती हैं।

(क) पर्याय शब्द जिन के सामान्य अर्थ में एक मुख्य विवक्षा समान होती है।—

शब्दों में एक या अनेक विवक्षाएँ हो सकती हैं परन्तु यह भी सम्भव है कि जिन पर्यायों पर विचार किया जा रहा हो उनमें एक मुख्य विवक्षा तो समान हो परन्तु अन्य विवक्षाएँ परस्पर विभिन्न तथा एक की अपेक्षा दूसरे से अधिक हों। उदाहरण के लिए 'अच्छा' और 'ठीक' पर्यायों को लीजिए। इन दोनों का सामान्य अर्थ है—जो किसी की दृष्टि में सन्तोषप्रद हो। इन दोनों में सन्तोषप्रद होने की विवक्षा समान रूप से है। जैसे (क) अच्छा है, ऐसा ही सही। और (ख) ठीक है, ऐसा ही सही।

'अच्छा' और 'ठीक' में परस्पर विभिन्न विवक्षाएँ भी हैं। 'अच्छा' में (क) खराब या दूषित न होने की,[1] (ख) स्वस्थ होने की[2] (ग) मान, मात्रा में यथेष्ट होने की,[3] (घ) खरा, शुभ और महत्त्वपूर्ण होने की भी विवक्षाएँ हैं।[4]



१. जैसे—अच्छा दूध।
२. जैसे—अच्छी दृष्टि।
३. जैसे—अच्छा भोजन।
४. जैसे—अच्छा दिन।

'ठीक' में (क) गलत न होने की,[1] (ख) नीति या न्यायपूर्ण होने की[2] भी विवक्षाएँ हैं।

(उक्त रेखा चित्र में क-क रेखा 'अच्छा' के अर्थ की और ख-ख रेखा 'ठीक' के अर्थ की सूचक है। च-छ स्थान अच्छा और ठीक के सामान्य अर्थ का बोधक है। सामान्य अर्थ में स्थित ऊर्ध्व रेखा ज-झ समान विवक्षा है जो दोनों शब्दों के अर्थ में व्याप्त है।)

"पुराना" और "प्राचीन" पर्याय शब्दों में बहुत दिनों से अस्तित्व में आये होने का सामान्य अर्थ है। जैसे—पुराना जमाना, प्राचीन समय। "पुराना" में एक विवक्षा यह भी है कि जो बहुत दिनों से उपयोग में आ रहा हो। जैसे—पुराने वस्त्र नौकरों को दे देने चाहिए। "प्राचीन" में "पुराना" की अपेक्षा बहुत पहले होने की, विशेषत: मध्य युग या उस से भी पहले होने की विवक्षा है। "पुराना" तो कुछ महीनों का भी हो सकता है। परन्तु प्राचीन सैकड़ों या हजारों वर्ष पहले का होगा। जैसे—पुरानी बात, प्राचीन इतिहास।

इसी प्रकार "आवश्यकता" और "अपेक्षा" में समान विवक्षा है—अभाव की पूर्ति की अभीष्टता। "आवश्यकता" में विभिन्न विवक्षा है—अभीष्ट वस्तु के विना काम न चल सकने की। जब कि "अपेक्षा" में विभिन्न विवक्षा है—अप्राप्ति की अवस्था में किसी प्रकार काम के चले चलने की; जैसे—जीवन के लिए भोजन की आवश्यकता होती है और स्वाद के लिए तरकारी में मसाले की अपेक्षा होती है।

ऐसे पर्याय जिनके सामान्य अर्थ एक समान विवक्षा से युक्त होते हैं उनमें से कुछ हैं:—

शंका	सन्देह
उपयुक्त	उचित
आकर्षक	मनोहर
वीर	साहसी
चलना	फिरना
उपाय	युक्ति
त्रुटि	चूक
बड़ा	विशाल

---

१. जैसे—सवाल ठीक है।

२ जैसे—उन्होंने ठीक कहा है।

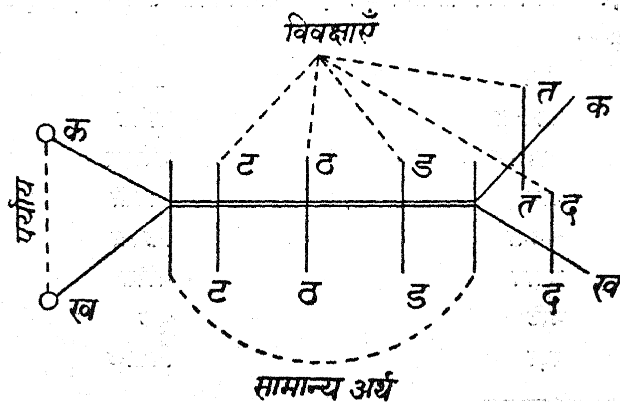
चौड़ा	विस्तृत
दर्द	पीड़ा
छल	धोखा
आना	पहुँचना
	आदि आदि

(ख) पर्याय शब्द जिनके सामान्य अर्थ में एक से अधिक विवक्षाएँ समान होती हैं—

इस कोटि के पर्यायों का सामान्य अर्थ (क) कोटि के पर्यायों की अपेक्षा अधिक व्यापक होता है। यहाँ दो, तीन या अधिक विवक्षाएँ होती हैं और एकाध विवक्षा भिन्न भी होती है। उदाहरण के लिए "अर्पण" और "समर्पण" पर्यायों को लीजिए। इन दोनों में कोई चीज स्वतः तथा आदरपूर्वक अपने से बड़े को सौंपने का भाव है। यहाँ स्वतः देने, आदरपूर्वक देने तथा अपने से बड़े को देने की तीन विवक्षाएँ समान हैं; परन्तु समर्पण नाममात्र को या औपचारिक भी होता है और वास्तविक भी परन्तु अर्पण सदा वास्तविक होता है। यदि कोई अपनी कृति किसी को समर्पण करता है तो देने की यह क्रिया औपचारिक और नाममात्र के लिए होगी परन्तु जब कोई देश के लिए अपना जीवन अर्पण या समर्पण करता है तो देने की यह क्रिया वास्तविक होगी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अर्पण और समर्पण पर्यायों में तीन तीन विवक्षाएँ समान हैं और एक-एक भिन्न।

उक्त का रेखा चित्र कुछ इस प्रकार होगा।



(च-छ सामान्य अर्थ है जो ट-ट, ठ-ठ और ड-ड तीन विवक्षाओं से संवलित है। अर्पण में त-त तथा समर्पण में द-द विवक्षाएँ परस्पर विभिन्न हैं।)

निम्नलिखित पर्यायों में एक से अधिक विवक्षाएँ समान हैं:

घर और मकान—(इमारत, तथा जिसमें वास हो)

चिह्न और लक्षण—(मूर्त होते हैं और भूत काल के किसी बात के सूचक हैं)[1]

जिद और हठ—(अपनी बात पर अड़े रहने और दूसरे की बात न मानने की समान विवक्षाएँ)

कोमल और सुकुमार—(जिनमें कठोरता का अभाव हो तथा जो प्रिय अनुभूति या संवेदन उत्पन्न करते हों)

विचित्र और विलक्षण—(साधारण से भिन्न तथा अपरिचित होने की समान विवक्षाएँ)

इसी कोटि में हम ऐसे पर्याय शब्द भी ले सकते हैं जिनमें एक शब्द अपने पर्याय शब्द का अर्थ अभिव्यक्त करने के अतिरिक्त कुछ और भी अर्थ व्यक्त करता है। एक शब्द के अर्थ में जितनी विवक्षाएँ हैं उसके पर्याय में उन विवक्षाओं के अतिरिक्त एकाध विवक्षाएँ अधिक भी हैं। "करनी" और "करतूत" पर विचार करने से ज्ञात होता है कि "करनी" शब्द उचित और अनुचित दोनों प्रकार के कार्यों के लिए प्रयुक्त होता है और उसका पर्याय "करतूत" केवल अनुचित प्रकार के कार्यों के लिए प्रयुक्त होता है। "जल्दी" और "उतावली" दोनों में नियत या आवश्यक समय से पहले काम खत्म करने की विवक्षा है, परन्तु "उतावली" में घबरा कर या अधिक उत्सुक होकर काम करने की विवक्षा भी है। "कुशल" और "निपुण" दोनों में कार्य सम्पादन की योग्यता होती है। परन्तु निपुण में किसी कार्य-विशेष की कार्य-प्रणाली का पूरा ज्ञान होने की भी विवक्षा है।

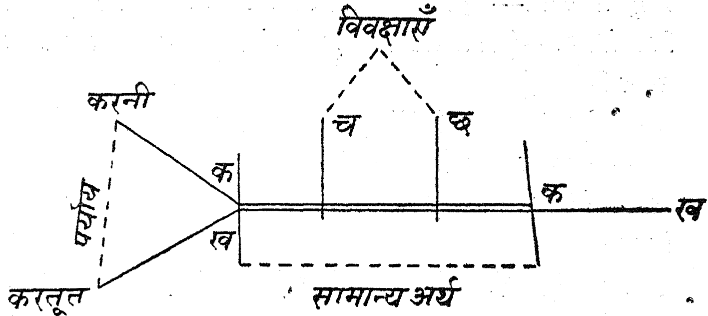
कुछ ऐसे ही पर्याय शब्द ये हैं

१.	छाया	परछाईं
२.	बचत	लाभ
३.	मुख	मुँह
४.	स्नेह	प्रेम
५.	चतुर	चालाक
६.	दौड़ाना	भगाना
		आदि आदि

---

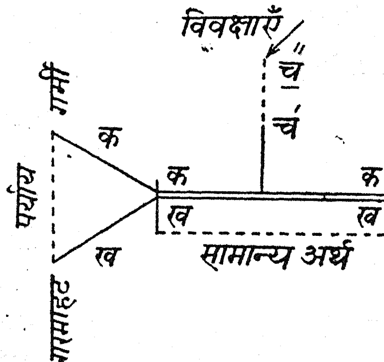
१. लक्षण अमूर्त भी होता है और वर्तमान तथा भविष्यत् काल की किसी बात का सूचक भी होता है।

दूसरी कोटि के पर्यायों के उक्त भेद की पर्यायवाचकता को निम्न रेखा-चित्र द्वारा दरशा भी सकते हैं।



(अर्थात् एक पर्याय का अर्थ क-क है और दूसरे का ख-ख। क-क सामान्य अर्थ भी है क्योंकि दोनों में व्याप्त है। क-क सामान्य अर्थ की विवक्षाएँ समान हैं। ख-ख अर्थ वाले शब्द का अर्थ विस्तार क-क अर्थ वाले शब्द की अपेक्षा अधिक है।)

इसी कोटि में पर्यायों का एक और ऐसा विभेद भी आता है जिसमें सामान्य अर्थ और विवक्षा एक होने पर भी एक की विवक्षा दूसरे शब्द की अपेक्षा अधिक उग्र होती है। उदाहरण के लिए तीव्र, उग्र और प्रचण्ड में विवक्षागत उग्रता क्रमशः बढ़ती जाती है। "कम्पन" की अपेक्षा "थरथराहट" की विवक्षा अधिक तीव्र है। "पीड़ा" की अपेक्षा "वेदना", "दुःख" की अपेक्षा "विषाद" अधिक तीव्र होता है।



यह रेखा-चित्र उक्त स्थिति को अधिक स्पष्ट करता है।

(यहाँ क-ख पर्याय शब्दों का अर्थ है। विवक्षाएँ च च दोनों में समान है; परन्तु तीव्रता में कुछ-कुछ अन्तर है। यह अन्तर चं चँ द्वारा व्यक्त किया गया है।)

(ग) जिन पर्यायों के सामान्य अर्थ में उनकी समस्त विवक्षाएँ सम्मिलित होती हैं—

ऐसे शब्दों में आर्थी विभेद नहीं होता। जैसे—घूस और रिश्वत, हालत और दशा, आसमान और आकाश, नफा और लाभ, उगाही और वसूली, हस्तशिल्प और दस्तकारी, जंगली और वन्य, दाम और मूल्य, निर्लज्ज और बेशर्म, सँकरा और तंग, खामोश और चुप, बहिरा और बधिर, अवसर और मौका, यकीन और विश्वास, रिवाज और प्रथा, रेशम और सिल्क, लेकिन और परन्तु, ताकि और इसलिए कि शाख और डाल, आरम्भ और शुरू, शीत और सर्दी, निद्रा और नींद, रात्रि और रात, हरजाना और क्षति, पृष्ठ और पेज, सहल और सरल, केवल और सिर्फ आदि आदि।

विभिन्न कोटियों के पर्यायों में परिवर्त्यता

पर्यायों की परिवर्त्यता के सम्बन्ध में हमारे सामने निम्नलिखित स्थितियाँ आती हैं:—

१. कुछ पर्याय परिवर्त्य होते हैं।
२. कुछ पर्याय परिवर्त्य नहीं होते।
३. कुछ पर्याय कुछ अवस्थाओं में परिवर्त्य होते हैं और कुछ अवस्थाओं में परिवर्त्य नहीं होते।

पर्यायों का परिवर्त्य होना या न होना मुख्यतः नीचे लिखी बातों पर आधारित है।

१. प्रसंग

पर्यायों की परिवर्त्यता में प्रसंग बहुत बड़ा हेतु है। क कोटि के पर्यायों में जिनमें एक मुख्य विवक्षा समान होती है और अन्य विवक्षाएँ भिन्न होती हैं उनमें प्रसंगानुकूल यदि मुख्य विवक्षा पर ही जोर देना हो, तो पर्याय परिवर्त्य होंगे और यदि मुख्य विवक्षा के अतिरिक्त किसी अन्य विवक्षा पर भी जोर देना हो तो उस समय जिस पर्याय में वह विवक्षा नहीं है वह उस पर्याय के स्थान पर परिवर्त्य नहीं होगा जिसमें वह विवक्षा है। जब बहुत समय पहले अस्तित्व में आए हुए होने के तथ्य पर जोर देना होता है तब तो **प्राचीन** और **पुराना** दोनों परिवर्त्य होते हैं। जैसे पुराना जमाना, प्राचीन समय, पुराना साहित्य, प्राचीन ग्रन्थ आदि। जब पहले के समय के होने के साथ व्यवहृत होने के फलस्वरूप निकम्मे हो जाने की

विवक्षा भी सम्मिलित होती है तब 'पुराना' का ही प्रयोग होगा उसके स्थान पर 'प्राचीन' नहीं चल सकता। जैसे "पुराने कपड़े किसी भिखमंगे को दे दो।"

यदि पर्याय एक ही व्यक्ति या वस्तु के बोधक हैं, और उनमें विवक्षाएँ भिन्न-भिन्न हों और यथेष्ट तीव्र भी हों तथा प्रसंग ऐसा हो कि किसी एक विवक्षा का मुख्य रूप से कथन करना हो तब यथार्थ भाव की दृष्टि से वे पर्याय परिवर्त्य नहीं होंगे। नीचे के उदाहरणों से यह अधिक स्पष्ट हो जायगा।

मन मोहन सों मोह कर तू घनश्याम निहारि।
कुंज बिहारी सों बिहर गिरिधारी उर धारि॥

× × ×

गुलाल की लाली से लाल भये,
न वह कृष्ण रहे न वह गोरी रही।

उक्त दोनों पद्यों में मनमोहन, घनश्याम, कुंजबिहारी, गिरिधारी और कृष्ण इन पर्यायवाचक शब्दों के स्थान पर कृष्ण के दूसरे पर्याय नहीं बैठाए जा सकते और न 'गोरी' के स्थान पर राधा, वृषभानुजा आदि पर्याय ही रखे जा सकते हैं, क्योंकि इन में प्रसंगानुकूल विवक्षाएँ भिन्न भिन्न हैं।

ख कोटि के पर्यायों में एकाधिक विवक्षाएँ समान होती हैं इसलिए इस कोटि के पर्यायों में क कोटि के पर्यायों की अपेक्षा परिवर्त्यता अधिक होती है। "अच्छा" और "बढ़िया" में एकाधिक विवक्षाएँ समान हैं। उपयोगी होने, प्रशंसनीय होने, खरा होने की आदि विवक्षाएँ समान हैं। इनमें से कोई एक या अनेक विवक्षाएँ अभिव्यक्त करना जब अभिप्रेत होगा तो "अच्छा" और "बढ़िया" दोनों पर्याय परिवर्त्य होंगे। स्पष्ट है कि प्रासंगिक दृष्टि से इन दोनों पर्यायों में क कोटि के पर्यायों की अपेक्षा परिवर्त्यता की गुंजाइश अधिक है।

प्रसंग के विचार से ग कोटि के पर्यायों में परिवर्त्यता की सब से अधिक गुंजाइश है क्योंकि उन में अर्थ सम्बन्धी विवक्षाओं की विभिन्नता नहीं होती है।

२. वातावरण

जिस प्रकार प्रसंग पर बहुत कुछ निर्भर है कि अमुक पर्याय अमुक का परिवर्त्य हो या न हो उसी प्रकार वातावरण भी पर्यायों की परिवर्त्यता का निर्णायक हेतु है।

प्रथमतः कविता के क्षेत्र में शब्दों का चयन बहुत कुछ छन्द, वर्ण, लय, मात्रा, आदि के विचार से करना पड़ता है। इस प्रकार विभिन्न अवस्थाओं में एक ही

अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए एक ही शब्द से काम नहीं चल सकता। कहीं तीन वर्णों या मात्राओं के शब्द की आवश्यकता होती है तो कहीं चार वर्णों या मात्राओं के शब्द की आवश्यकता होती है। कहीं ओज के लिए महाप्राण वर्णवाले शब्दों की आवश्यकता होती है और कहीं प्रसाद, माधुर्य आदि के लिए घोष, अनुनासिक या अंतस्थ वर्णों वाले शब्दों की आवश्यकता होती है। अनेकार्थक शब्दों का प्रयोग तथा चयन काकु, वक्रोक्ति आदि अलंकारों की सिद्धि के लिए आवश्यक होता है। बहुत सम्भव है कि एक अर्थ में जो एक शब्द दूसरे का पर्याय है दूसरे अर्थ में वह उसका पर्याय न हो। यदि दूसरे अर्थ में भी वह पर्याय है तो परिवर्त्यता सम्भव है।

दूसरे विषय अनुरूप या पात्रानुरूप भी पर्यायों का चयन होता है। एक बात विद्वानों की सभा में कुछ और शब्दों में कही जाती है और वही बात निरक्षरों की मण्डली में दूसरे शब्दों में कही जाती है। बड़ों से कुछ कहने के लिए और प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया जाता है तथा बच्चों से कुछ कहते समय कुछ और प्रकार के शब्दों का। कुछ अवस्थाओं में यह तत्त्व भी पर्यायों को परिवर्त्य नहीं होने देता।

तीसरे विभिन्न स्रोतों से आकर मिले हुए शब्दों की योजना तो साधारणतया सम्भव है परन्तु जब एक स्रोत के शब्दों का ही व्यवहार किसी वाक्य में किया जा रहा है तो उसमें से एक शब्द के स्थान पर दूसरे स्रोत का पर्याय बैठ तथा जँच जाए यह आवश्यक नहीं है। हम कहते हैं "प्रथम कक्षा" या "पहली जमात"। परन्तु यहाँ 'पहली' के स्थान पर 'प्रथम' का प्रयोग प्रशस्त नहीं है। "प्रथम जमात" पद का प्रयोग करना असम्भव ही लगता है। पुरुष के साथ सज्जन विशेषण ही फबता है "शरीफ" नहीं। एक वाक्य लीजिए जिसमें सभी शब्द तदभव हैं—

मैंने पूरी पोथी पढ़ डाली है।

अब यदि हम "पूरी" के स्थान पर उसका पूर्ण (संस्कृत) पर्याय रखें तो वाक्य का रूप होगा—

मैंने पूर्ण पोथी पढ़ डाली है।

स्पष्ट है कि इस प्रकार के वाक्य शिष्ट-सम्मत नहीं होते। एक और वाक्य लीजिए :—अमुक ग्रंथ लिखकर उन्होंने प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। 'प्राप्त' की जगह 'हासिल' का प्रयोग हिन्दोस्तानी के पुजारी भले ही उपयुक्त समझते हों परन्तु हिन्दी भाषा में ऐसे प्रयोग प्रशस्त नहीं होते। ऐसे प्रयोग खटकते हैं। स्पष्ट है कि यह परिस्थिति भी पर्यायों के परिवर्त्य होने में बाधक हो सकती है।

३. वाक्यचारीय प्रयोग

जब शब्दों के प्रयोग बँध जाते हैं तो उस अवस्था में भी उनका परिवर्तन सम्भव नहीं होता। यहाँ दो बातें इस सम्बन्ध में स्मरण रखने योग्य हैं। एक तो यह कि ऐसी अवस्था में शब्दों या पदों का अर्थ बदल जाता है और दूसरे यह कि कभी कभी रचना की दृष्टि से उनका रूप व्याकरण सम्मत नहीं रह जाता।

'वायु' और 'हवा' पर्याय हैं। परन्तु अनेक स्थानों पर 'हवा' का प्रयोग इस प्रकार बँध चुका है कि उसके स्थान पर 'वायु' का प्रयोग सम्भव नहीं। जैसे—हवा उड़ाना, हवा करना, हवा खाना, हवा देना, हवा बिगड़ना, हवा होना आदि आदि।

इसी प्रकार 'दिमाग' और 'मस्तिष्क' भी पर्याय हैं। परन्तु मुहावरेदारी ने दिमाग खाना, दिमाग चाटना, आदि प्रयोगों को बाँध दिया है। प्रयोग की वाक्यचारिता मस्तिष्क का दिमाग के स्थान पर परिवर्तन रोकती है। कुछ अवसरों पर बोलचाल के शब्दों का प्रयोग भी बँधा होता है। जैसे—गधे को बाप बनाना। बाप के स्थान पिता परिवर्त्य नहीं है। 'शीशी सुँघाना' के स्थान पर 'बोतल सुँघाना' भी नहीं चलता। और इसी प्रकार 'बोतल पीना' के स्थान पर 'शीशी पीना' नहीं चलता। स्पष्ट है कि प्रयोग की वाक्यचारिता ही 'शीशी' के स्थान पर 'बोतल' का तथा 'बोतल' के स्थान पर 'शीशी' का प्रयोग रोकती है।

असावधानतावश या भ्रमवश शब्दों का प्रयोग एक दूसरे के स्थान पर किया जाता है। पर्यायवाची शब्दों में यह गुंजाइश अधिक होती है। 'संकलन' और 'संग्रह' जोड़-बटोर कर रखी हुई चीजों को कहते हैं। संकलन वास्तव में चुन छाँट कर तथा सोच-समझ कर किया जाता है। परन्तु "संग्रह" में उतने चुनने छाँटने तथा सोचने-समझने की आवश्यकता नहीं होती। उक्त दोनों शब्दों का अन्तर ध्यान में रखने पर परिवर्त्यता नहीं होगी और यदि उक्त अन्तर ध्यान में न रखा जाए तो परिवर्त्यता सम्भव है। प्राय: असावधानता के कारण ही निम्न पर्यायों का एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग होता है—

आयु	अवस्था
उपहार	भेंट
कहा-सुनी	झगड़ा
कृपा	दया
कोप	क्रोध
चयन	वरण

चेष्टा	प्रयत्न
बोली	ताना
योग्यता	सामर्थ्य
वैर	शत्रुता
सभ्यता	संस्कृति
हीला	बहाना
	आदि आदि

पर्यायों की परिवर्त्यता के सम्बन्ध में यह बात भी ध्यान रखने योग्य है कि कुछ अवस्थाओं में उक्त में से कोई एक कारण कुछ में दो कारण और कुछ में तीनों कारण बाधक या सहायक हो सकते हैं।

तीसरा अध्याय

उद्‌भव और विकास

पर्यायों का उद्‌भव

शब्दों की उत्पत्ति कैसे हुई, मनुष्य जब पशुओं की तरह भाषाहीन था तो उसे नाना ध्वनियों के मेल-जोल से इतनी भारी शब्द-सम्पत्ति बना लेने की सूझ कैसे हुई और भाषा कैसे बनी—ये ऐसे प्रश्न हैं जिनके सम्बन्ध में भाषा-विज्ञानियों ने विचार करने की चेष्टा की है। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि अमुक शब्द की उत्पत्ति दैवी सिद्धान्त, धातु सिद्धान्त, अनुकरण मूलकतावाद, अनुरणन मूलकतावाद, मनोभावाभिव्यक्तिवाद, श्रमपरिहार मूलकतावाद, भाव संकेतवाद, निर्णय सिद्धान्त अथवा विकासवाद आदि के आधार पर हुई है। जो हो, अन्तिम सत्य यही है कि शब्द की सृष्टि व्यक्ति करता है, समाज उसे मान्यता देता है, उस पर अपनी मोहर लगाता है और इस प्रकार मन की शक्तियों के विकास के साथ साथ भाषा का विकास होता चलता है।

आरम्भिक अवस्था में किसी भाषा में पर्याय नहीं होते। किसी एक शब्द द्वारा कोई एक भाव व्यक्त करने का काम पूरा हो जाता है। परन्तु हम देखते हैं कि सभी समृद्ध भाषाओं में पर्याय होते हैं जो धीरे धीरे उनमें घर कर लेते हैं। सामान्यतया पर्यायों के अस्तित्व में आने के चार कारण बतलाए जा सकते हैं:—

१. विचारजन्य प्रवृत्ति

२. आकर भाषा, बोलियों तथा विदेशी भाषाओं से शब्द ग्रहण (ग्राह्यशक्ति)

३. भाषिक समर्थता

४. अर्थ विकास

इन चारों में कौन सा कारण सबलतम है यह बतलाना कठिन है। किसी भाषा में साधारणतया एक-दो कारणों की प्रमुखता होती है। हिन्दी भाषा में हम चारों कारणों को सक्रिय देखते हैं।

१. विचारजन्य प्रवृत्ति

बुद्धिजीवी मनुष्य सदा कल्पनाशील होता है। जो आदमी किसी दूसरे को कुछ

करता देखता है वह प्रायः स्वयं भी वैसा ही बल्कि उससे भी बढ़कर वैसा काम करने की इच्छा-शक्ति रखता है। जब किसी एक चीज का नाम रख लिया जाता है उसके बाद भी उसके गुणों, क्रियाओं, स्वरूपों, सम्बन्धों आदि के आधार पर नवीन पर्यायों का निर्माण होता रहता है।

जिस व्यक्ति के जितने अधिक गुण, क्रियाएँ, सम्बन्ध आदि दृष्टिगोचर हुए तथा जिसके जितने अधिक और नाना प्रकार के स्वरूपों की कल्पना की गई उसके बोधक उतने ही अधिक शब्द बने जो परस्पर पर्याय कहे जाने लगे। संस्कृत भाषा के 'शिव' के पर्यायों से यह बात अधिक स्पष्ट हो सकती है। शिव को 'शम्भु' इसलिए कहा गया कि वे कल्याण के स्थान हैं, 'पशुपति' इसलिए कहा गया कि वे सब प्राणियों के स्वामी हैं (पशूनां जीवानां पतिः), 'गिरीश' इसलिए कहा गया कि वे कैलास पर्वत के स्वामी हैं (गिरेः कैलासस्य ईशा), पिनाकी (पिनाकिन्) इसलिए कहा गया कि वे पिनाक नामक धनुष के धारण करनेवाले हैं, उनकी पत्नी उमा है इसलिए उन्हें 'उमेश' कहा गया, उन्हें 'नीलकण्ठ' इसलिए कहा गया कि हलाहल पान करने के कारण उनका गला नीला पड़ गया था। वे चन्द्रमा को मस्तक पर धारण करते थे इसलिए उन्हें 'चन्द्रभाल' कहा गया, उन्होंने त्रिपुर राक्षस का नाश किया था इसलिए उन्हें 'त्रिपुरारि' कहा गया, वे जटाजूट धारी थे इसलिए उन्हें 'धूर्जटी' कहा गया, वे नागों के भी स्वामी थे इसलिए उन्हें 'नागेंद्र' कहा गया, उन्होंने कामदेव का नाश किया इसलिए उन्हें 'स्मरहर' कहा गया, दुष्टों को वे रुलाते थे इसलिए उन्हें 'रुद्र' कहा गया आदि आदि। इसी प्रकार भगवान् राम को 'रघुवंशी' इसलिए कहा गया कि उन्होंने रघुकुल में जन्म लिया था, 'रघुनाथ' इसलिए कहा जाता था कि वे रघुओं के स्वामी थे, 'अवधेश' इसलिए कहा जाता था कि वे अवध के राजा थे। वे महाराजा दशरथ के पुत्र थे इसलिए 'दशरथ-नंदन' कहलाए, वे जानकी के पति थे इसलिए 'जानकीनाथ' हुए आदि आदि। 'बन्दर' के 'ललमुँहाँ' फाख्ता के लिए 'कुकू' 'चुड़ैल' के लिए 'पिच्छल पाई', 'हलका कुत्ता' के लिए 'बिसहा', 'मोटरकार' के लिए 'फटफटिया', 'खड़ाऊँ' के लिए 'खट-खटिया' आदि सैकड़ों शब्द हिन्दी में इसी तरह बने हैं।

विचारजन्य प्रवृत्ति किस प्रकार पर्यायों के निर्माण में सहायक होती है, इस सम्बन्ध में संस्कृत भाषा में कुछ विशिष्ट प्रक्रियाएँ भी दृष्टिगत होती हैं। यहाँ ऐसी दो प्रक्रियाओं का उल्लेख आवश्यक जान पड़ता है।

जब किसी शब्द का निर्माण किसी वस्तु के विशिष्ट गुण के आधार पर किया जाता है फिर यदि वही विशिष्ट गुण किसी और वस्तु या वस्तुओं में भी दृष्टिगत होता है तब वह शब्द उस वस्तु या उन वस्तुओं के बोधक शब्दों का भी पर्याय बन

जाता है। एक उदाहरण लीजिए। आरम्भ में जिस विशिष्ट चीज का रंग पीला या हरा रहा होगा उसे 'हरि' कहा गया होगा। बाद में बानर, सिंह, सर्प, शुक, मयूर आदि का रंग पीला (या हरा) दिखाई देने पर इन सभी को 'हरि' कहा जाने लगा। इस प्रकार 'हरि' शब्द वानर, सिंह, सर्प, शुक, मयूर आदि शब्दों का भी पर्याय हो गया। इसी प्रकार 'सारंग' शब्द किसी चितकबरी चीज के लिए गढ़ा गया होगा। मेघ, मयूर, सर्प आदि भी चितकबरे होते हैं इसलिए 'सारंग' इन शब्दों का भी पर्याय बन गया।

दूसरी प्रक्रिया भी ध्यान देने योग्य है। जिन दो चीजों के नाम, रूप, रंग आदि में समानता दृष्टिगत हुई उनके पर्याय एक दूसरे के पर्याय माने जाने लगे। अर्जुन पाण्डवों के एक भाई का भी नाम है और एक प्रकार के वृक्ष का भी। समय पाकर अर्जुन (पाण्डव) के पर्याय धनंजय, धन्वी, पांडव, पार्थ आदि अर्जुन वृक्ष के भी पर्याय बन गये और अर्जुन वृक्ष के कुकुद, फल्गुन आदि पर्याय अर्जुन (पाण्डव) के भी पर्याय बन गए। इसी प्रकार रात्रि और हरिद्रा तथा कर्पूर और चन्द्रमा के पर्याय भी परस्पर एक दूसरे के पर्याय बन गए हैं।

२. आकर भाषा, बोलियों और विदेशी भाषाओं से शब्द ग्रहण

सभी भाषाओं के इतिहास में एक सामान्य विशेषता यह है कि वे अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करती हैं। अन्य भाषाओं में महत्त्वपूर्ण स्थान आकर भाषा का होता है। लेटिन भाषा के शब्द अँगरेजी, जरमन, फ्राँसीसी आदि भाषाओं में हजारों की संख्या में हैं। संस्कृत के शब्द बँगला, गुजराती, मराठी, उड़िया, हिन्दी, पंजाबी आदि भाषाओं में भरे पड़े हैं। स्थानिक बोलियों के शब्द भी लेखकों, कवियों तथा पर्यटन करनेवालों की सहायता से सामान्य भाषा में आ जाते हैं। विदेशियों के किसी प्रदेश में आकर बस जाने के फलस्वरूप उनके शब्द भी स्थानिक भाषाओं में चल निकलते हैं। अनुभवों, विचारों, वस्तुओं आदि के बढ़ने के साथ साथ नए नए शब्दों की भी आवश्यकता होती है, जो शब्द किसी भाषा में नहीं होता उसे वह किसी दूसरी भाषा से अपना लेती है। साधारणतया दूसरी भाषा से ऐसे शब्द ही लिए जाते हैं जो ग्राहक भाषा में नहीं होते परन्तु ऐसे शब्द भी लिए जाते हैं जिनके पर्याय शब्द उस भाषा में पहले से वर्तमान होते हैं।

विदेशी तथा अन्य भाषाओं के शब्द एक अन्य परोक्ष रूप से पर्यायों के उद्भव के कारण बनते हैं। मान लीजिए कि एक भाषा ने एक ऐसा शब्द दूसरी भाषा से गृहीत किया है जिसका अर्थ व्यक्त करनेवाला शब्द उसके पास नहीं था। अब-इसी शब्द के आधार पर आगे चलकर वह भाषा अपने यहाँ नया शब्द भी कुछ

अवस्थाओं में गढ़ लेती है। गवर्नर, युनाइटेड नेशन्स, हेडमास्टर, हेडक्लार्क आदि शब्द तो अँगरेजी से बँगला, गुजराती, मराठी, हिन्दी, पंजाबी आदि भाषाओं ने अपनाये ही, साथ ही साथ आगे चलकर राज्यपाल, राष्ट्र-संघ, प्रधानाध्यापक, बड़े बाबू आदि शब्द भी बना लिए।

३. भाषिक समर्थता

हर भाषा में उपसर्गों, प्रत्ययों आदि की सहायता से नए शब्द गढ़ने या रचने की शक्ति होती है। यह बात दूसरी है कि यह शक्ति किसी भाषा में अधिक होती है और दूसरी में कम। संस्कृत में यह शक्ति अपेक्षया अधिक है। एक ही शब्द में विभिन्न प्रत्यय लगाकर (जैसे—भद्रता और भद्रत्व) एक ही शब्द में विभिन्न उपसर्ग लगाकर (जैसे–अनादर और निरादर) पर्याय बना लिए जाते हैं। शब्द या विभिन्न शब्दों में विभिन्न प्रत्यय-उपसर्ग लगाकर पर्याय बनाने की समर्थता सभी भाषाओं में होती है। अँगरेजी में 'लाई' और 'अनट्रू','बाउन्डलेस' और 'अन-लिमिटेड', 'डिफरेंस' और 'अनलाईक' ऐसे पर्याय यथेष्ट हैं। संस्कृत में भी स्वच्छ और निर्मल, अतिथि और अभ्यागत, स्थिर और अचल आदि पर्याय प्रचुर हैं। इनके अतिरिक्त एक ही शब्द-भेद (अथवा उसके प्रकार) के पर्यायवाची शब्दों में एक ही या विभिन्न प्रत्यय आदि लगाकर दूसरे शब्द-भेद के पर्यायवाची शब्द बना लेना भी पर्यायों के उद्भव का कारण है, जो उसकी भाषिक समर्थता का ही परिणाम है। साधारण और सामान्य पर्यायवाची विशेषणों से साधारणतः और सामान्यतः पर्याय क्रिया-विशेषण ; लज्जा और शर्म पर्यायवाची संज्ञाओं से निर्लज्ज और बेशर्म पर्यायवाची विशेषण और फिर इनसे निर्लज्जता और बेशर्मी सरीखी पर्यायवाची भाववाचक संज्ञाएँ बनाने की समर्थता भाषा ही में तो है।

जिन भाषाओं में समस्त पद बनाने की क्षमता अधिक होती है उनमें पर्यायों की प्रचुरता भी प्रायः देखने में आती है। संस्कृत पर्याय कोशों में 'पार्वती' के जो पर्याय दिये गये हैं उनमें से कुछ हैं:—उमा, चण्डी, कमला, रमा, मंगला, गिरिजा, गौरी, जगम्दबा, दुर्गा, नन्दा आदि। उक्त पर्यायों में पुरुषवाचक उत्तरपद जोड़कर शिव के पर्याय बना लिए जाते हैं। जैसे—उमानाथ, चण्डीनाथ, कमलेश्वर, रमेश, मंगलेश्वर, गिरिजाभूषण, गौरीपति, जगम्दबानारायण, दुर्गानारायण, नन्देश्वर आदि। इसी प्रकार हम यह भी देखते हैं कि शिव के कुछ पर्यायों में स्त्री प्रत्यय जोड़कर उन्हें पार्वती के पर्याय बना लिया जाता है। जैसे—भवानी, महेशी, रुद्राणी, शिवा, जगतेश्वरी, अखिलेश्वरी आदि आदि।

४. अर्थ-विकास

विकास के नियमों के अनुसार शब्दों के अर्थ में भी विकास होता है। यदि एक शब्द दूसरे का आज पर्याय नहीं है तो सम्भव है कि उनमें एक का अर्थ बदल जाए और कल को वे एक दूसरे के पर्याय बन जाएँ। 'भार' बोझ का अर्थ देता था परन्तु अर्थ में विकास होने के कारण वह 'उत्तरदायित्व' का पर्याय बन गया है। सं० क्षोभ का तद्भव रूप है 'छोह'। यह 'क्षोभ' का पर्याय न होकर 'प्रेम' का पर्याय हो गया। इसी प्रकार नाम, दाम, मुक्ति, रुपया, स्याही आदि के अर्थ में परिवर्तन होने के कारण ये क्रमात् यश, मूल्य, मोक्ष, धन और रोशनाई के पर्याय बन गये हैं।

आज जब कि लाक्षणिक प्रयोगों की ओर प्रवृत्ति बढ़ रही है, शब्द नए अर्थ धारण करते जा रहे हैं और पर्यायों की वृद्धि होती चल रही है। लाठी 'सहारा' का, चूड़ामणि 'उत्तम' का, पानी 'सौन्दर्य' का, गधा 'मूर्ख' का, पिसना 'भोगना' का, छानना 'खोजना' का पर्याय बन गया है।

हिंदी पर्यायों की विकास-परम्परा

हिन्दी भाषा का इतिहास हमारे भाषा-शास्त्रियों ने एक हजार वर्ष पुराना बतलाया है। डा० श्यामसुन्दरदास के मत से हिन्दी भाषा के आदि काल का आरम्भ सम्वत् ११०० से और डा० धीरेन्द्र वर्मा के मत से सन् १००० ई० से होता है। हिन्दी भाषा का विकास-क्रम दिखलाते हुए डा० धीरेन्द्र वर्मा ने तीन-चरणों की ओर निर्देश किया है। प्रथम चरण अर्थात् प्राचीन काल १००० ई० से १५०० ई० तक, द्वितीय चरण अर्थात् मध्यकाल १५०० ई० से १८०० ई० तक और तृतीय चरण अर्थात् आधुनिक काल १८०० ई० के बाद का है।

पूर्वपीठिका—अपभ्रंश में पर्याय

आधुनिक भाषाएँ जिस समय अस्तित्व ग्रहण कर रही थीं उस समय यहाँ अपभ्रंश पूर्णरूपेण साहित्यिक भाषा के पद पर प्रतिष्ठित थी। अपभ्रंश का काल मोटे रूप से ५०० ई० से १००० ई० तक है। कुछ लोगों ने इसे ६०० ई० से १००० ई० या १२०० ई० तक भी माना है। अपभ्रंश भाषा के प्राचीनतम उदाहरण भरत के नाट्यशास्त्र (३०० ई०) में भी मिलते हैं। इससे यही अर्थ निकलता है कि अपभ्रंश के बीज इससे भी कुछ पहले फूटने लगे थे और पाँचवीं या छठी शताब्दी तक आते-आते इसमें प्रचुर रूप से काव्य रचनाएँ होने लगी थीं। अपभ्रंश की कुछ

काव्य रचनाएँ पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दियों की भी मिलती हैं, यद्यपि बोल-चाल की भाषा के रूप में इसका प्रयोग १००० ई० के आस-पास उठ सा गया था।[1]

यदि हम अपभ्रंश के शब्द-भण्डार पर ध्यान दें तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इसमें तद्भव शब्दों का ही अधिक प्रयोग हुआ है। देशज शब्द भी प्रचुर हैं परन्तु इसमें तत्सम शब्दों का प्रयोग नहीं दिखायी पड़ता है।[2] अपभ्रंश में जहाँ 'गज' के लिए 'गय', 'लोचन' के लिए 'लोयण', 'मदन' के लिए 'मयण', जैसे तद्भव शब्द चलते थे, वहाँ परवर्ती अपभ्रंश में इन तद्भव शब्दों के साथ साथ इनके तत्सम रूप भी चलने लगे। यह प्रवृत्ति जायसी, सूर, तुलसी आदि प्राचीन हिन्दी कवियों में भी मिलती है।[3]

तद्भव पर्याय

अपभ्रंश में मुख्यतः तद्भव पर्याय ही मिलते हैं; जैसे—

माणुस (मनुष्य)—(बलि किउ माणुस जम्मडा देक्खंतहँ पर सारु)
—जोइन्दु[4]

पुरिस (पुरुष)—(चाइ कवित्तें पोरिसई पुरिसहु होइण कित्ति)
—देवसेन[5]

णिब्बाण (निर्वाण)—(आइ ण अंत ण मज्झ णउ, णउ भव णउ णिब्बाण)
—सरहपा[6]

मोक्ख (मोक्ष)—(मोक्खउँ कारण जोइया अण्णु ण तंतु ण मंतु)
—जोइन्दु[7]

करवालु (करवाल)—(उम्मिल्लइ सहिरेह जिवँ करि करवालु पियस्तु)
—हेमचन्द्र[8]

---

१. डा० भोलानाथ तिवारी—भाषा विज्ञान कोश, पृष्ठ ४९७
२. डा० नामवर सिंह—हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, पृष्ठ १२१
३. डा० नामवर सिंह—हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, पृष्ठ १५१
४. डा० नामवर सिंह—अपभ्रंश दोहा कोश, पृ० २९१ दोहा २८
५. " " " " " " २९० " २१
६. " " " " " " २८७ " ५
७. " " " " " " २९१ " ३०
८. " " " " " " ३०० " ९५

खग्ग (खड्ग)—(एइ ति घोड़ा एह थलि एइ ति निसिआ खग्ग)
—हेमचन्द्र[१]

घोड़ा (घोटक)—(एइ ति घोड़ा रुह थलि एइ ति निसिया खग्ग)
—हेमचन्द्र[२]

तुरय (तुरन्ग)—(गय गय रह गय तुरय गय पायक्क डानि भिच्च)
—प्रबन्ध चिन्तामणि[३]

सअलु (सकल)—(सअलु णिरन्तर बोहि ठिअ कहिं भव कहिं णिब्बाण)
—सरहपा[४]

सब्ब (सर्व)—(बच्छु जुदीसै कुसुमियउ इंधणु हो सइ सब्बु)—जोइन्दु[५]

लोअ (लोग)—(आयइँ लोअहो लो अणइँ जाई सटइँ न भंति)—हेमचन्द्र[६]

जण (जन)—(विहलिअ जण अब्युद्धरणु कंतु वुडीरह जोइ)—हेमचन्द्र[७]

द्रहि (ह्लद)—(मइँ जाणिउँ बुड्डीसु हउँ पेम्म द्रहि हुहुरु त्ति)
—हेमचन्द्र[८]

सरवर (सरोवर)—(सरिहिं न सरेहिं न सरवरे हिँ न वि उज्जाण वणेहिं)
—हेमचन्द्र[९]

कुछ अवस्थाओं में तीन-तीन तद्भव पर्याय भी दृष्टिगत होते हैं; जैसे—

ससि (शशि)—(जहि मण ण संचरइ रवि ससि णाह पवेस)
—सरहपा[१०]

मयंकु (मयंक)—(णवर मयंकु वि तिह तवइ जिह दिणयरु खय कालि)—
—सोमप्रभ[११]

---

१. डा० नामवर सिंह—अपभ्रंश दोहा कोश, पृष्ठ २९८, दोहा ७४
२. ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,
३. ,, ,, ,, ,, ,, ,, २९६ ,, ६०
४. ,, ,, ,, ,, ,, ,, २८८ ,, १०
५. ,, ,, ,, ,, ,, ,, २९० ,, २४
६. ,, ,, ,, ,, ,, ,, ३०२ ,, १०३
७. ,, ,, ,, ,, ,, ,, ३०१ ,, १०२
८. ,, ,, ,, ,, ,, ,, ३१२ ,, १७५
९. ,, ,, ,, ,, ,, ,, ३११ ,, १६९
१०. ,, ,, ,, ,, ,, ,, २८७ ,, ३
११. ,, ,, ,, ,, ,, ,, २९४ ,, ५३

ससहुरु (शशधर)—(कहिँ ससहुरु कहिँ मयरहरु कहिँ बरिहिणु कहिँ मेहु)
—हेमचन्द्र[१]

सायरु (सागर)—(सायरु षाई लंक गढ़ु गढवइ दस शिरु राउ)
—प्रबन्ध चिन्तामणि[२]

रणयायर (रत्नाकर)—(चिंत्ति विसाउ न चिंति यह रयणायर गुण पुंज)—प्रबन्ध चिन्तामणि[३]

मयरहरु (मकरधर)—(कहिं ससहुरु कहिं मयरहरु कहिं बरिहिणु कहिँ मेहु)—हेमचन्द्र[४]

सिउ (शिव)

संकरु (शंकर)

रुद्द (रुद्र)—(सो सिउ संकरु विण्हु सो सो रुद्द विसो बुद्ध)—जोइन्दु[५]

संस्कृत तद्भव पर्याय

परवर्ती अपभ्रंश में तत्सम शब्दों की बाढ़ दिखाई पड़ती है।[६] यही कारण है कि अपभ्रंश में संस्कृत और तद्भव पर्याय भी यथेष्ठ मात्रा में मिलते हैं; जैसे—

प्रभु—(आपण पइं प्रभु होइयह कइ प्रभु कीजइ हत्थि)—प्रबन्ध चिन्तामणि[७]

सामि (स्वामी)—(सामि सुभिच्चु वि परिहरइ संमाणेइ खलाइँ)—प्रबन्ध चिंतामणि[८]

रवि—(जहि मण पवण ण संचरइ रवि सहि णाह पवेस)—सरहपा[९]

दिणयरु (दिनकर)—(णवर मयंकु वि तिह तवइ जिह दिणयरु खयकालि)
—सोमप्रभ[१०]

---

१. **डा० नामवर सिंह—अपभ्रंश दोहा कोश पृष्ठ ३११ दोहा १६७**
२. " " " " " " २९५ " ५९
३. " " " " " " २९५ " ५८
४. " " " " " " ३११ " १६७
५. " " " " " " २९१ " ३१
६. " " " **हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग पृष्ठ १५१**
७. " " " **अपभ्रंश दोहा कोश पृष्ठ २९७ दोहा** " ७०
८. " " " " " " २९८ " " ७८
९. " " " " " " २८७ " " ४
१०. " " " " " " २९४ " " ५३

भव—(अण्ण तरंग कि अण्ण जलु भव सम रव सम सरुअ)—सरहपा[१]
जगु (जगत्)—(अक्खर बाढ़ा सअल जगु णाहि णिरक्खर कोइ)—सरहपा[२]
ख—(अण्ण तरंग कि अण्ण जलु भव-सम ख सम सरुअ)—सरहपा[३]
गयण (गगन)—(हिअइ खुडुक्कइ गोरडी गयणि घुडुक्कइ मेहु)—हेमचंद्र[४]
कन्त—(कन्त तइ हिअ यट्ठियह विरह विडंबइ काउ)—अब्दुर्रहमान[५]
पिअ (प्रिय)—(पिअ विरहानल संतविअ जइ वच्चउ सुरलोइ)—अब्दुर्रहमान[६]
नारी—(च्यारी बइल्ला धेनु दुइ मिट्ठा णुल्ली नारी)—प्रबन्धचिन्तामणि[७]
धण (धन्या)—(विहिं पयारें हि गइअ धण कि गज्जहि खलमेह)—हेमचन्द्र[८]
तिय (स्त्री)—(अम्मी ते नर ढड्ढसी जे वीससंह तियांह)—प्रबन्धचिन्तामणि[९]
एक ही तत्सम शब्द के दो दो विकारी रूप भी मिलते हैं; जैसे—
भंति; भंतडी (भ्रांति)—(आयइँ लोअहो अणइँ जाइ सरइँ न भंति)
—हेमचन्द्र[१०]

(प्रावइ मुणिहँ वि भंतडी ते मणि अडा गगंति)—हेमचन्द्र[११]
गोरी, गोरडी—(गो गोरीमुह निज्जिउ बद्दलि लुक्कु मियंकु ने ह)—हेमचन्द्र[१२]
—(साव सलोणी गोरडी नवखी क वि विस गंठि)—हेमचन्द्र[१३]
नेह, नेहडा (स्नेह)—(अगलिअ नेह विवट्टांह जोअण लक्खु वि जाउ)
—हेमचन्द्र[१४]

---

१. डा० नामवर सिंह—अपभ्रंश दोहा कोश, पृष्ठ २८८ दोहा ७
२. ,, ,, ,, ,, ,, ,, २८८ ,, ९
३. ,, ,, ,, ,, ,, ,, २८८ ,, ७
४. ,, ,, ,, ,, ,, ,, ३०५ ,, २८
५. ,, ,, ,, ,, ,, ,, २९३ ,, ४०
६. ,, ,, ,, ,, ,, ,, २९२ ,, ३९
७. ,, ,, ,, ,, ,, ,, २९६ ,, ९२
८. ,, ,, ,, ,, ,, ,, ३०२ ,, १०४
९. ,, ,, ,, ,, ,, ,, २९६ ,, ६४
१०. ,, ,, ,, ,, ,, ३०२ ,, १०३
११. ,, ,, ,, ,, ,, ,, ३०८ ,, १४८
१२. ,, ,, ,, ,, ,, ,, ३०६ ,, १३८
१३. ,, ,, ,, ,, ,, ,, ३१० ,, १६०
१४. ,, ,, ,, ,, ,, ,, २९८ ,, ७५

—(जइ तहे तुट्टउ नेहँडा मइँ सहुँ न वि तल तार)—हेमचन्द्र[1]

देशज तद्भव पर्याय

देशज शब्दों की अपभ्रंश में कमी नहीं है, परन्तु वे अधिकतर ऐसे हैं जिनके तत्सम या तद्भव पर्याय नहीं दिखायी पड़ते। अपवाद रूप में ही सही कुछ देशज तद्भव पर्यायों के उदाहरण लीजिए :—

झुम्पडा—(बालिउ गलइ सु झुम्पडा गोरी तिम्मइ अज्जु)—हेमचन्द्र[2]
कुडीर (कुटीर)—(विह लिअजण अब्युद्ध रणु कंतु कुडीर जोइ)—हेमचन्द्र[3]
बिट्टी (हिं० बेटी)—(बिट्टीए मइं भणिच तुहुँ मा कुरु बंकी दिट्ठि)—हेमचन्द्र[4]
पुत्ति (सं० पुत्री)—(पुत्ति सकण्णी भल्लि जिवँ मारइ हियइ पइट्ठि)
—हेमचन्द्र[5]
छावडइ—(विरह परिग्गह छावडइ पहराविउ निखक्खि)—हेमचन्द्र[6]
गत्त (सं० गात्र)—(वेस विसिट्ठह वारिअइ जइ वि मणोहर गत्त)—
सोमप्रभ[7]

हिन्दी का प्राचीन काल और पर्याय

जब आधुनिक प्रान्तीय भाषाएँ १००० ई० के लगभग उद्भूत हो रही थीं उस समय तथा उसके दो-तीन शताब्दी बाद से संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं में साहित्य रचा जा रहा है। संस्कृत का अन्तिम महाकाव्य 'नेषधीय चरित' कन्नौज के अन्तिम सम्राट् जयचन्द (१२वीं शताब्दी) के राजकवि श्री हर्ष द्वारा रचित है। प्राकृत विशेषतः महाराष्ट्री प्राकृत में लिखित साहित्य तो १७वीं-१८वीं शताब्दियों का रचित भी मिलता है। 'लीलाबाई' ११वीं शताब्दी की प्रसिद्ध रचना है। सोरि चरित्र, उसापिरुद्ध और कंसवहों रचनाएँ तो १७वीं-१८वीं शतियों की मानी जाती हैं। अपभ्रंश साहित्य भी १०वीं शताब्दी के आस-

---

१. डा० नामवर सिंह—अपभ्रंश दोहा कोश, पृष्ठ ३०१ दोहा ९६
२. " " " " " " ३०९ " १५४
३. " " " " " " ३०१ " १०२
४. " " " " " " २९७ " ७३
५. " " " " " " २९७ " ७३
६. " " " " " " २९३ " ४८
७. " " " " " " २९३ " ४८

पास खूब जोरों से बढ़ रहा था। कुमार पाल चरित (११७२ ई० से पूर्व) कुमार पाल प्रतिबाध (११८४ ई०) प्रबन्ध चिन्तामणि (१३०४ ई०) आदि उस काल के अपभ्रंश के प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। इस प्रकार स्वभावतः हिन्दी रचनाओं में तद्भव और देशज के अतिरिक्त संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रष्ट शब्द आये हैं। ११वीं शताब्दी में तुर्की शासकों ने भारत पर आक्रमण आरम्भ किए थे और तेरहवीं शताब्दी तक भारत को उन्होंने अपने शासन में कर लिया था। इस प्रकार इस काल में फारसी, अरबी, तुर्की के शब्द भी हमारे यहाँ प्रचलन में आ रहे थे।

जन-भाषा और पर्याय

प्राचीन काल में भी हिन्दी के जन और साहित्यिक दो रूप रहे हैं। जनभाषा में तद्भव और देशज शब्दों की ही प्रधानता रहना स्वाभाविक था। संस्कृत शब्द बोल-चाल की भाषा में बहुत कम होंगे क्योंकि उस समय की साहित्यिक भाषा में उन्हें १० प्रतिशत से अधिक स्थान नहीं मिल सका। फारसी-अरबी के शब्द भी जनभाषा में आने लगे होंगे। इस प्रकार स्पष्ट है कि हिन्दी के प्राचीन काल के आरम्भिक समय से तद्भव पर्याय होने चाहिए। परन्तु वस्तु-स्थिति इसके ठीक विपरीत है। संस्कृत पर्यायों में से किसी एक शब्द का तद्भव रूप ही बोलचाल में आया जबकि अन्य शब्द अनुत्पादक ही रह गए। संस्कृत के जो शब्द जनभाषा में प्राचीन काल में थे वे घिसते-घिसते जीवन-यापन करते हुए अब तक चले आ रहे हैं। मुरलीधर श्रीवास्तव ने 'हिन्दी तद्भव शास्त्र' में संस्कृत पर्यायों की सूची देकर दिखलाया है कि संस्कृत पर्यायों में से किसी एक शब्द का तद्भव रूप हिन्दी में आया है और इस प्रकार अन्य शब्द अनुत्पादक रहे।

कुछ उदाहरण[1] यहाँ श्रीवास्तव जी के ग्रन्थ से दिए जाते हैं:—

उत्पादक	अनुत्पादक
गृह (घर)	निकेत, सदन, आगार, आयतन, आवास, निलय आदि।
अग्नि (आग)	वह्नि, पावक, वेश्वानर, कृशानु, जातवेद आदि।
हस्ती (हाथी)	द्विप, कर, नाग, द्विरद, वारण आदि।
स्त्री (तिरिया)	अबला, बनिता, कलत्र, कामिनी, ललना।
वायु (बाई)	समीर, मारुत, अनिल, जगत्प्राण आदि।
स्वर्ण (सोना)	हिरण्य, हेम, कनक, हाटक।
सर्व (सब)	समस्त, अखिल, निखिल, समग्र आदि।

१. हिन्दी तद्भव शास्त्र, पृष्ठ ८८.

उक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि प्राचीन काल की आरम्भिक अवस्था में बोलचाल की भाषा में तद्भव पर्याय भी नहीं थे। संस्कृत पर्यायों का तो प्रश्न ही नहीं उठता। तद्भव-संस्कृत पर्यायों की गुंजाइश भी कम है। क्योंकि बोलचाल की भाषा में तद्भव शब्द के आगे उसके तत्सम शब्द का कुछ महत्त्व नहीं है। संस्कृत के ऐसे शब्द ही बोलचाल में चले होंगे जो बहुत सरल हों तथा जिनके तद्भव रूप हिन्दी में न बने हों। ऐसे शब्दों में कवि, कमल, नदी आदि शब्द आते हैं जो बोलचाल में प्रचलित थे। परन्तु इनके तद्भव रूप अथवा इनके संस्कृत पर्याय प्रचलन में नहीं थे। श्याम और किसुन, जल और पानी, नाग और सम्प (साँप) आदि कुछ पर्यायों की स्थिति प्राचीन बोलचाल की भाषा में स्वीकार्य हो सकती है। प्राचीन काल की लौकिक भाषा के स्वरूप का ठीक ठीक पता लग जाने पर उस समय के पर्यायों पर और अधिक प्रकाश पड़ेगा।

तेरहवीं से १५वीं शताब्दी तक मुसलमान भारत में यथेष्ट मात्रा में आ चुके थे और बलात् असंख्य हिन्दुओं को मुसलमान भी बना चुके थे। इस समय तद्भव और विदेशी पर्याय हिन्दी की बोलचाल में अवश्य घर कर चुके थे। इस प्रकार थोड़े से तद्भव तथा संस्कृत तद्भव पर्यायों के अतिरिक्त अब तद्भव-फारसी, तद्भव-अरबी, तद्भव-तुर्की पर्याय भी आ गए। कुछ समय बाद इन्होंने साहित्य में भी स्थान बना लिया और खुसरो, कबीर आदि की रचनाओं में पर्याप्त मात्रा में आए।

प्राचीन काल की साहित्यिक भाषा और उसके पर्यायों की स्थिति

१. तद्भव और देशज शब्द हिन्दी के अपने हैं। इस दृष्टि से हमें सबसे पहले अनुमान करना पड़ता है कि हमारे यहाँ तद्भव पर्याय होंगे। ऊपर हम देख चुके हैं कि संस्कृत पर्यायों में से किसी एक का ही तद्भव रूप हिन्दी ने अपनाया जबकि दूसरे अनुत्पादक ही रहे। परन्तु फिर भी कुछ तद्भव पर्याय पृथ्वीराज रासो में मिलते हैं।

जैसे—

सीस	और	सिर
(मुक्क्यो सीस निज अग्ग राज हुंकार देवि। छन्द २२८७)[1]		(इह सौमसर बैर लेहु अप्पन सिर सट्टैं। छन्द ११०६)[2]

१. चन्द बरदाई और उनका काव्य (विपिन बिहारी त्रिवेदी) पृ० १५३
२. ,, ,, ,, ,, ,, पृ० १३४

चन्द	और	ससि
दुतिय चन्द पूनिम जिमें ......। छन्द ६४३)[१]		(वही जमी आसमान सही रवि ससि निसि बासुर। छन्द ६४५)
चष	और	द्रिग
(सतगुनी विरचता होह चष....। छन्द १६)[३]		(उर जोति रत्त द्रिग। छन्द ३९)[४]
फूल	और	पुहुप
(अनरित फल काहू करन किहि कर अनरिति फूल। छन्द १५१)[५]		(करिग देव सब किति बुटिट्ठ नम पुहुप अपारं। छन्द १३०५)[६]
बयन	और	बोल
(मन बयन्न नहि टरे विप्र णिझि णिझि यों रट्टय। छन्द १६२)[७]		(बोलत बोल न बने...। छन्द १६३)[८]

यह सत्य है कि ऐसे पर्याय अधिक नहीं हैं। हाँ, तद्भव विकारी शब्दों के रूप में पर्याय यथेष्ट हैं। जैसे—ग्यान, गियान; भुअ, भुवन; कन्ह, किस्न; बंझ बाँझ; लवन, लोन; वेष भेष; संझ, साँझ आदि आदि।

२. तद्भव संस्कृत पर्याय शब्द हिन्दी के आरम्भिक युग में मिलते हैं। पृथ्वी-राज रासो में ऐसे प्रमाण यथेष्ट हैं। जैसे—

---

१. चन्दबरदाई और उनका काव्य (विपिन बिहारी त्रिवेदी) पृ० १६१
२. ,, ,, ,, पृ० १६२
३. ,, ,, ,, पृ० १४१
४. ,, ,, ,, पृ० १४०
५. ,, ,, ,, पृ० १३९
६. ,, ,, ,, पृ० १५३
७. ,, ,, ,, पृ० १४०
८. ,, ,, ,, पृ० १४१

(क)

पुत्त (तद्भव) और पुत्र (तत्सम)

(पत्तीय पुत्त अप्पों पुहुमि। छन्द २१)[1]

(सवै भविष्य विचारि मन पुत्रि पुत्र चहु आन। छन्द २०)[2]

पुहुमि (तद्भव) और भमि (तत्सम)

पुत्तीय पुत्र अप्पों पुहुमि। छन्द २१)[3]

(भूमि रष्णै षल षडै। छन्द २१)[4]

रत्त (तद्भव) और रक्त (तत्सम)

(...उर जोति रत द्रिग। छन्द १९)[5]

(...झरं रक्त डोरी महामल्ल होइ। छन्द ९१)[6]

(ख)

सब्ब (तद्भव) और सकल (तत्सम)

(सब्ब पत्र जुषद्धा। छन्द ५८५)[7]

(सामन्त सकल अति प्रेम तर....। छन्द १७०२)[8]

अनी (तद्भव) और सेना (तत्सम)

(मई सेल मेल अनी एक एकं। छन्द ९३३)[9]

(लियं सढषं सेना सुरा-तन सद्धी। छन्द २६८)[10]

स्पष्ट है कि तद्भव संस्कृत पर्यायों के दो भेद हैं। तद्भव शब्द का तत्सम शब्द भी अपना लिया गया। यह एक भेद हुआ और दूसरा भेद यह हुआ कि तद्भव

---

१. चन्द बरदाई और उनका काव्य (विपिन बिहारी त्रिवेदी) पृ० १५७
२. " " " पृ० १५७
३. " " " पृ० १५७
४. " " " पृ० १५७
५. " " " पृ० १४०
६. " " " पृ० १३७
८. " " " पृ० १३८
७. " " " पृ० १६६
९. " " " पृ० १३६
१०. " " " पृ० १४५

शब्द अपनाया गया और उसका पर्याय ऐसा संस्कृत शब्द बना जो उसके तत्सम रूप का संस्कृत में पर्याय था।

३. अनेक तद्भव शब्दों के एक से अधिक संस्कृत पर्याय भी पृथ्वीराज रासो में दिखाई पड़ते हैं। जैसे—

तद्भव	संस्कृत
पुहुमि[१]	भूमि[२]
धरनि[३]	धरा[४]
	अवनि[५]
डर[६]	भय[७]
	त्रास[८]
बाजि[९]	तुरंग[१०]
	हय[११]
	अश्व[१२]
पुत्त[१३]	पुत्र[१४]
	सुत[१५]

१., २., ३., ४., ५., चन्द बरदाई और उनका काव्य,
छन्द २१ पृ० १५७, छन्द ५२७ पृ० १३६, छन्द १६२ पृ० १४१, छन्द १५० पृ० १३९, छन्द १९ पृ० १४० क्रमशः।
६. चन्द बरदाई और उनका काव्य छन्द १०४ पृ० १३४
७. " " " १९ पृ० १४०
८. " " " १६३ पृ० १४१
९. " " " ५२९ पृ० १३८
१०. " " " ५७९ पृ० १४२
११. " " " ४८१ पृ० १४२
१२. " " " ९० पृ० १३७
१३. " " " २१ पृ० १५७
१४. " " " २१ पृ० १५७
१५. " " " ५६४ पृ० १५६

द्रिग्ग[1]	नयन[3]
चष[2]	लोचन[4]

४. कुछ ऐसे तद्भव तत्सम आदि शब्द हैं जिनके अरबी **और फारसी के** पर्याय भी पृथ्वीराज रासो में मिलते हैं। जैसे—

तद्भव	**संस्कृत**	**विदेशी** (अरबी-फारसी)
पुहुमि[5], धरनि[6] आदि	=अवनि[7], भूमि,[8] आदि	=जमी[9]
—	नभ[10], व्योम[11]	आसमान[12]
—	अग्नि[13]	आतप[14]
पन्थ[15]	—	राह[16]

५. तद्भव पर्याय शब्द नहीं हैं, संस्कृत पर्यायवाची शब्द अपनाए गए। ऐसे उदाहरण पृथ्वीराज रासो में यथेष्ट हैं। कुछ उदाहरण लीजिए:—

---

१. चन्द बरदाई और उनका काव्य छन्द १६२ पृ० १४०
२. ,, ,, ,, १६२ पृ० १४१
३. ,, ,, ,, ५८६ पृ० १३५
४. ,, ,, ,, १६२ पृ० १४०
५. ,, ,, ,, २१ पृ० १५७
६. ,, ,, ,, ५२७ पृ० १३६
७. ,, ,, ,, १९ पृ० १४०
८. ,, ,, ,, १६२ पृ० १४१
९. ,, ,, ,, ६४५ पृ० १६२
१०. ,, ,, ,, ९४ पृ० १३७
११. ,, ,, ,, ९३४ पृ० १३७
१२. ,, ,, ,, ६४५ पृ० १६२
१३. ,, ,, ,, ५५ पृ० १४०
१४. ,, ,, ,, २२७ पृ० १३६
१५. ,, ,, ,, ५२८ पृ० १३८
१६. ,, ,, ,, २६८ पृ० १४५

भयानक	कराल	विकराल	घोर
(छन्द-५२८)[1]	(छन्द-२२८६)[2]	(छन्द-५८०)[3]	(छन्द-२२८५)
	असुर	दानव	
	(छन्द-११)[5]	(छन्द-५२६)[6]	
	जंगल	वन	
	(छन्द-१६३)[7]	(छन्द-५२६)[8]	
नृप	नरपति	भूप	महीप
(छन्द-९९)[9]	(छन्द-३२१)[10]	(छन्द-१६३)[11]	(छन्द-५८५)[12]
	कोप	क्रोध	
	(छन्द-१३५)[13]	(छन्द-१३९)[14]	
	विष	गरल	
	(छन्द-५३)[15]	(छन्द-५३)[16]	

देशज शब्दों के सामान्यतः पर्याय नहीं होते। चन्दबरदाई और उनके काव्य में देशज शब्दों की जो सूची[17] दी गई है उनके देशज, तद्भव, संस्कृत अथवा विदेशी

---

१. चन्दबरदाई और उनका काव्य पृ० १३८
२. " " " पृ० १५३
३. " " " पृ० १३९
४. " " " पृ० १५३
५. " " " पृ० १३९
६. " " " पृ० १३९
७. " " " पृ० १४१
८. " " " पृ० १३८
९. " " " पृ० १३५
१०. " " " पृ० १५५
११. " " " पृ० १४१
१२. " " " पृ० १४४
१३. " " , पृ० १३५
१४ " " " पृ० १३६
१५. " " " पृ० १३६
१६. " " " पृ० १३६
१७. " " " पृ० ३११

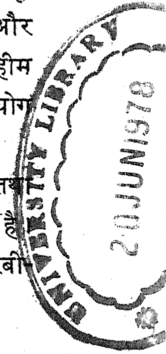
पर्याय रासो में नहीं मिलते। देशज शब्दों की विशेषता बतलाते हुए डा० विपिन बिहारी त्रिवेदी लिखते हैं कि 'इन शब्दों (देशज शब्दों) की विशेषता यह है कि ये दीर्घ काल से अपनी अर्थ-वाहकता और भाव-सबलता के कारण चले आ रहे हैं तथा इन्होंने प्रचलित भाषाओं के अनुरूप शब्दों (अर्थात् पर्यायों) को बहुधा दबा दिया है।[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि आरम्भिक काल में ही हिन्दी में पर्याय शब्द थे और वे मुख्यतः तद्भव, तत्सम और विदेशी स्रोतों से आए थे। तद्भव शब्द तो प्रचलन में थे और तत्सम तथा विदेशी शब्द भी प्रचलित हो गए थे।

मध्य काल और पर्यायों की स्थिति

मध्यकाल के आरम्भ में हम देखते हैं कि हमारे साहित्य की बागडोर साधु-सन्तों के हाथों में आती है। कबीर, जायसी, तुलसी, सूर, मीराँ आदि ऐसे ही साधु-सन्त थे। इस समय की साहित्यिक भाषा मुख्यतः ब्रज थी परन्तु जायसी और तुलसी ने अवधि में भी रचनाएँ की हैं। इसके अतिरिक्त तुलसी, कबीर और रहीम की रचनाओं में तो खड़ी-बोली, बघेली, बुँदेली, छत्तीसगढ़ी आदि के शब्दों के प्रयोग भी मिलते हैं।

मध्यकाल वस्तुतः पर्यायों की वृद्धि का युग कहा जा सकता है। संस्कृत तथा तद्भव पर्यायों और अरबी-फारसी पर्यायों की इस युग में यथेष्ट वृद्धि हुई है। बोलियों के शब्दों ने भी पर्यायों की वृद्धि में इस युग में विशेष योग दिया है। अरबी-फारसी के पर्यायों की बहुलता भी इस युग में देखने में आती है।



संस्कृत पर्याय

मध्य युग में पराधीन हिन्दुओं को अपनी प्राचीन संस्कृति, प्राचीन साहित्य, प्राचीन विचारों, प्राचीन शिक्षा आदि की महत्ता का दिग्दर्शन कराना और इस प्रकार उनमें नवजीवन लाना भी हमारे सन्तों का मुख्य उद्देश्य था। संस्कृत साहित्य के रत्नों को भाषा में लाने के लिए संस्कृत शब्दों को अपनाना इसलिए आवश्यक था कि बोलचाल की भाषा में उनकी अभिव्यक्ति के लिए शब्द नहीं थे। प्राचीन काल में संस्कृत साहित्य में प्रकट किए गए विचारों को हमारे कवियों ने अपनाने तथा अपनी भाषा में प्रकट करने की ऐसी तत्परता नहीं दिखाई थी जैसी कि मध्य-काल में हम देखते हैं। शिवपुराण के दूसरे अध्याय का दूसरा श्लोक है—

---

१. चन्दबरदाई और उनका काव्य, पृ० ३१०

हिम शैल गुह काचिदेका परम शोभना।
यत्समीपे सुरनदी बहति वेगत:॥

उक्त श्लोक का भाव जब तुलसीदास जी रामायण में लाते हैं तब साथ ही साथ उक्त श्लोक के अनेक शब्द भी अपनाते हैं।

तुलसीदास की चौपाई है—

हिमगिरि गुहा एक अति पावनि।
बह समीप सुरसरी सुहावनि॥

स्पष्ट है कि हिम, समीप, सुर आदि संस्कृत शब्द अनुवाद के साथ साथ ही आ गए। अनुवाद का दूसरा रूप यह भी देखने में आता है कि मूल में जो संस्कृत शब्द आए हैं उनका प्रयोग न किया जाए, बल्कि अपनापन लाने के लिए अन्य शब्दों का प्रयोग किया जाए। ये अन्य शब्द भी तो संस्कृत से ही लेने पड़े। उक्त चौपाई में गोस्वामी जी ने 'गिरि' शब्द रखा है जबकि मूल श्लोक में 'शैल' था। इसी प्रकार उन्होंने मूल का 'नदी' शब्द न रखकर 'सरी' शब्द रखा है। 'रामचरित मानस' पूरा का पूरा 'नाना पुराण निगमागम सम्मत' है और हमारे वेद-पुराण सभी संस्कृत भाषा में लिखे हुए हैं। इस प्रकार हम तुलसी दास को संस्कृत पर्यायों का सबसे अधिक संग्रहकर्ता कह सकते हैं। मानस में सिन्धु, सागर, बारिधि, जलधि, जलनिधि, समुद्र, वारीश, अम्बुधि, बारिनिधि, पाथोधि, अम्बुपति, जलराशि, तोयनिधि, रत्नाकर इतने संस्कृत पर्याय आये हैं जबकि बिहारी रत्नाकर में सिन्धु, सागर और जलधि तीन संस्कृत पर्याय ही देखने को मिलते हैं।[1] इसी प्रकार महि, भूमि, धरणी, धरा, भू, वसुधा, भूमितल, क्षिति, जगतीतल, क्षोणी संस्कृत पर्याय रामचरित मानस में हैं जबकि बिहारी रत्नाकर में महि, भूमि और धरा ये तीन ही पर्याय देखने को मिलते हैं। उक्त तुलना से यह प्रकट होता है कि संस्कृत-साहित्य के अनुरागियों के द्वारा मध्यकाल संस्कृत पर्यायों से यथेष्ट रूप से समृद्ध हुआ।

संस्कृत पर्याय अपनाने वाले ऐसे मध्यकाल में कवि भी हुए हैं जिनका संस्कृत साहित्य से विशेष परिचय नहीं था। कबीर, मीराँ, जायसी ऐसे ही कवि थे। हाँ, इन्होंने किसी शब्द के चार-पाँच से अधिक संस्कृत पर्याय नहीं अपनाए जबकि तुलसी में संस्कृत पर्यायों की संख्या १५-१५ और २०-२० तक पहुँची है। केशव

---

१. मानस शब्द सागर (बद्रीदास अग्रवाल कृत) तथा बिहारी कोश (स्वयं लेखक कृत) से।

बिहारी, देव, घनानन्द आदि सभी कवियों की रचनाओं में संस्कृत पर्याय हैं और यथेष्ट मात्रा में हैं।

तद्भव पर्याय

प्राचीन युग की अपेक्षा तद्भव पर्यायों की भी प्रचुरता मध्ययुग में देखने में आती है। यह सिद्धान्त कि किसी बोली ने संस्कृत पर्यायों में से किसी एक का ही तद्भव रूप अपनाना ठीक है। परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि हर बोली ने किसी एक संस्कृत पर्याय के ही तद्भव रूप अपनाए हों। यहाँ हम स्वतंत्रता देखते हैं। कहीं शरीर से सरीर अपनाया गया और कहीं देह से देही अपनाया गया। जैसे—

इता देही परमल महकंदा।[1] = कबीरदास।
जिउ एकू अरू सगल सरीरा॥[2] = कबीरदास।

कबीरदास द्वारा प्रयुक्त तद्भव पर्यायों की बानगी देखिए:—

भउ (सं० भव)[3]	और	जग (सं० जगत्)[4]
बैसन्तरू (वेश्वानर)[5]	और	अगनि (अग्नि)[6]
कलतु (कलत्र)[7]	और	जोई (जाया)[8] त्रीज (स्त्री)[9]
कुंचर (कुंजर)[10]	और	गइ (गय)[11]
फन्दा (सं० बन्धन)[12]	और	पासु (पाश)[13]

---

१. सन्त कबीर (डा० रामकुमार वर्मा) पृ० १४
२. ,, ,, पृ० ३९
३. ,, ,, पृ० ८१
४. ,, ,, पृ० ३२
५. ,, ,, पृ० १११
६. ,, ,, पृ० ६१
७. ,, ,, पृ० २०७
८. ,, ,, पृ० ९९
९. ,, ,, पृ० ८३
१०. ,, ,, पृ० २१९
११. ,, ,, पृ० २६४
१२. ,, ,, पृ० ५४
१३. ,, ,, पृ० १९६

सभ (सर्व)[1]	और	सगल (समग्र)[2]
हलहर (हलधर)[3]	और	बरध (बलिवर्द)[4]

रामचरित मानस में एक शब्द के दो विकारी रूपों का भी प्रयोग हुआ था।

गिरिराज[5]	के	गिरिराई[6]	और	गिरिराऊ[7]
छाया[8]	के	छाई[9]	और	छाँह[10]
जगत्[11]	के	जग[12]	और	जगत[13]
स्थान	के	ठाँउ[14]	और	ठोरी[15]
विवाह	के	बिआह[16]	और	बिबाह[17]

आदि आदि

बहुत से शब्दों के तद्भव रूपों को तोड़ मरोड़कर लय-छन्द की रक्षा के निमित्त बनाया गया है। परन्तु ऊपर ऐसे अनेक उदाहरण हैं जो तद्भव पर्यायों की स्थिति पर प्रकाश डालते हैं रीतिकाल के प्रमुख कवियों केशव, बिहारी, देव, घनानन्द आदि के काव्य साहित्य में ऐसे पर्याय यथेष्ट हैं।

---

१. सन्त कबीर (रामकुमार वर्मा) पृ० २३७
२. ,, ,, पृ० २७
३. ,, ,, पृ० १४
४. ,, ,, पृ० २३६
५. रामचरित मानस (गीता प्रेस) १-११५-०
६. ,, ,, १-१०२-१
७. ,, ,, १- ६७-८
८. ,, ,, १-१०५-३
९. ,, ,, १- ६४-७
१०. ,, ,, २- ९६-५
११. ,, ,, ५-०-१ श्लोक
१२. ,, ,, १-१-६
१३. ,, ,, १- ६३-५
१४. ,, ,, १- २५-५
१५. ,, ,, १-२६४-७
१६. ,, ,, १-२२२-१
१७. ,, ,, १-१००-१

विदेशी पर्याय

प्राचीन काल ही में अरबी-फारसी के पर्याय शब्द क्षिप्र गति से हिन्दी भाषा में आने आरम्भ हो गए थे। मध्ययुग में मुसलमानों का भारत पर पूर्ण राज्य था। शासन की भाषा भी फारसी रही। इस प्रकार फारसी और फारसी के माध्यम से अरबी शब्दों का व्यवहार हिन्दी में बहुत अधिक बढ़ा। सूर, तुलसी, मीराँ, देव, बिहारी, पद्माकर आदि ने भी उक्त भाषाओं के शब्दों को खूब अपनाया। जैसे—कमान,[१] खलक[२], गुमान,[३] जुबान,[४] दाग,[५] निसान,[६] हुनर,[७] आदि ऐसे हजारों शब्द यत्र-तत्र दिखाई पड़ते हैं जिनके पर्यायवाची शब्द हमारे यहाँ पहले से थे। सूर ने यद्यपि फारसी-अरबी शब्दों को कम ग्रहण किया है फिर भी खसम,[८] जवाब,[९] अफसोस,[१०] हद,[११] जहर,[१२] आदि सैकड़ों शब्द उन्होंने ऐसे ही अपनाए हैं जिनके पर्याय हमारे यहाँ पहले से थे। देव, बिहारी, पद्माकर आदि सुकवियों ने भी धड़ल्ले से अरबी-फारसी के शब्दों को अपनाते रहे हैं।

आधुनिक काल और पर्यायों की स्थिति

यद्यपि सामान्य बोलचाल में पर्यायों को स्थान कठिनता से मिलता है फिर भी शिक्षित तथा सभ्य समाज की बोलचाल में पर्याय शब्दों के दर्शन होते हैं। चिन्ता, फिक्र; दुःख, अफसोस; सुन्दर, खूबसूरत; आकाश; आसमान; कठिन, मुश्किल; मन, दिल; विश्वास, इत्मीनान; दौड़, रेस; समाजवादी, सोशिलिस्ट; साम्यवादी, कम्युनिस्ट; सदस्य, मेम्बर; चुनाव, इलेक्शन; आदि ऐसे ही पर्याय हैं।

---

१. रामचरित मानस (गीता प्रेस) २· ४०-२
२. कवितावली ,, ८-९८
३. रामचरित मानस (गीता प्रेस) ७-६२क-०
४. ,, ,, १-२४०-३
५. विनय-पत्रिका ,, ७०
६. रामाज्ञा प्रश्न ,, ४-२-२
७. रामचरित मानस (गीता प्रेस) ७-३१-३
८. सूर सागर (न० प्र० स०) पद १३५२
९. ,, ,, ,, २०६०
१०. ,, ,, ,, ३८१०
११. ,, ,, ,, ४५२५
१२. ,, ,, ,, ४२३४

साहित्यिक क्षेत्र में हम देखते हैं कि पर्यायों में कुछ दृष्टियों से कमी भी हुई और कुछ दृष्टियों से वृद्धि भी हुई है।

कमी के कारण तीन हैं—

१. मध्ययुग में संस्कृत के जितने अधिक पर्याय साहित्य में चलते थे अब उनमें से अधिकतर प्रयुक्त नहीं किए जाते। यदि हम मानस और कामायनी को ही सामने रखें तो हम कह सकते हैं कि तुलसी ने भूमि के महि, धरणी, अवनि, धरा, भू, वसुधा, भूमितल, जगतीतल, क्षोणी, आदि पर्याय प्रयुक्त किए हैं जबकि कामायनी में उनमें से वसुधा, भूमितल, जगतीतल, क्षोणी आदि पर्याय नहीं है। इसी प्रकार मानस में सिन्धु के सागर, वारिधि, जलधि, उदधि, जलनिधि, समुद्र, वारीश, अम्बुधि, बारिनिधि, पाथोधि, अम्बुधिप, जलराशि, जलनाथ, तोयनिधि, रत्नाकर आदि पर्याय हैं परन्तु कामायनी में बारिधि, वारीश, अम्बुधि, वारिनिधि, पाथोधि, जलराशि, जलनाथ, तोयनिधि, रत्नाकर आदि पर्याय है ही नहीं।

२. तत्सम शब्दों के एक से अधिक विकारी रूप पर्यायों की तरह सूर, तुलसी, मीराँ, बिहारी आदि के साहित्य में चलते थे जबकि आज के साहित्य में ऐसी बात नहीं है। एक ही मान्य रूप चलता है।

३. अरबी-फारसी के पर्याय शब्द भी प्रचलन से हट रहे हैं। अँगरेजी शासन द्वारा अँगरेजी को राजकीय भाषा बनाना और फारसी को राजकीय पद से हटाना उसका प्रथम कारण रहा है। भारतेन्दु युग से हिन्दी के अनुरागियों की संख्या दिन दुगुनी रात चौगुनी बढ़ती रही है और स्वतन्त्र भारत ने इसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप अँगरेजी के स्थान पर हिन्दी को राजकीय भाषा के रूप में अंगीकृत कर लिया है। और अब प्रवृत्ति यह है कि अधिक अरबी-फारसी के शब्द गद्य-पद्य में नहीं आने दिए जाते और जहाँ तक हो सकता है उनके स्थान पर संस्कृत शब्दों का प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त फारसी-अरबी के जाननेवाले ही कम हैं और उनके अध्ययन की प्रवृत्ति भी घटती जा रही है।

सूरदास जी का एक पद्य है।

साँचौ सो लिखनहार कहावै।
काया-ग्राम **मसाहत** करि कै, जमा बाँधि ठहरावै।
मन-महतो करि **कैद** अपने में, ज्ञान-जहतिया लावै।
माँड़ि माँड़ि खरिहान क्रोध को, पोता भजन भरावै।
बट्टा काटि **कसूर** मरम कौ, फरद तलै लै डारै।
निहचै एक **असल** पै राखै, टरै न कबहूँ टारै।

करि **अवारजा** प्रेम प्रीति को, **असल** तहाँ खतियावै।
दूजे करज दूरि करि दैयत, नेंकु न तामैं आवै।
मुजमिल जोरै ध्यान कुल्ल कौ, हरि सौं तहँ लै राखै।
निर्भय रूप लोभ छाँड़िकै, सोई वारिज राखै।
जमा-खरच नीकें करि राखै, लेखा समुझि बतावै।
सूर आपु गुजरान **मुहासिब** लै जवाब पहुँचावै॥

इनमें से असल, कैद, कसूर, आदि शब्द हैं जो अब भी बोलचाल में तथा साहित्य में भी चलते हैं परन्तु मसाहत, अवारजा, मुजमिल, मुहासिब, आदि शब्द अब नहीं चलते।

४. साहित्यिक क्षेत्र में तद्‌भव और देशज शब्दों की अपेक्षा उनके संस्कृत पर्यायों को अधिक वरीयता दी जाती है। इसका मुख्य कारण यही है कि लोग पढ़-लिखकर देशज और तद्‌भव शब्दों को गँवारू समझने लगते हैं और उनका इस दृष्टि से अनादर करते हैं। बोलचाल में आगा-पीछा, खटका, जोबन, ठठ, तीखा, तिसरैत, दुबला, बढ़ावा आदि तद्‌भव तो चलते हैं परन्तु साहित्य में इनके स्थान पर असमंजस, यौवन, समूह, तीक्ष्ण, तटस्थ, दुर्बल और प्रोत्साहन शब्द आते हैं। संस्कृत-निष्ठ हिन्दी से हम भले ही बँगला, गुजराती, मराठी, तेलुगु आदि भाषाओं के समीप पहुँचते हैं परन्तु हम इस प्रकार अपने पर्यायों का ह्रास अवश्य कर रहे हैं।

पर्यायों की कुछ अंशों में आधुनिक काल में वृद्धि भी हुई है। शिक्षा, संस्कृति आदि सम्बन्धी अँगरेजी के बहुत से शब्द हम लोगों ने अपनाए हैं और उनके बाद में हिन्दी तदर्थी शब्द भी गढ़ लिए हैं। जैसे—

सोशलिस्ट	——	समाजवादी
कम्युनिस्ट	——	साम्यवादी
प्रिंसिपल	——	प्रधानाचार्य
टिकट	——	प्रवेशपत्र
इंजीनियर	——	अभियन्ता
प्रेस	——	मुद्रणालय
		आदि

ऐसा भी हुआ कि अँगरेजी शब्द पहले से प्रचलित शब्दों के पर्याय बने हैं।

---

१. रसायन विज्ञान (अजन्ता प्रेस लि०) पृ० १४१

हिन्दी शब्द		अँगरेजी शब्द
दल	——	पार्टी
न्यायाधीश	——	मजिस्ट्रेट
सदस्य	——	मेम्बर
इमारत, भवन	——	बिल्डिग
नौकरी	——	सरविस
नमूना	——	सैम्पुल
मिरगी	——	हिस्टीरिया
		आदि

इधर कुछ भारतीय भाषाओं के शब्दों ने भी हमारे यहाँ पर्यायों में वृद्धि की है। वस्तुतः ऐसे शब्द इने-गिने ही हैं।

अकाट्य (बँगला)	अखंडनीय
नितान्त (बँगला)	बिलकुल, कुल, सारा
सराहनीय (बँगला)	प्रशंसनीय, स्तुत्य
सुविधा (बँगला)	आसानी, सुभीता
लागू, चालू (मराठी)	प्रचलित
भागीदारी (मराठी)	साझेदारी, हिस्सेदारी
खोली (मराठी)	कमरा, कोठरी
	आदि

उक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि हमारे यहाँ पहले यदि कोई शब्द था तो हमने उसका तद्भव संस्कृत या विदेशी पर्याय अर्थात् कभी एक स्रोत का पर्याय अपनाया और कभी कभी तद्भव, संस्कृत तथा विदेशी पर्याय अर्थात् अनेक स्रोतों के पर्याय अपनाए।

दूसरी स्थिति यह है कि हिन्दी में पहले तद्भव शब्द नहीं था बल्कि संस्कृत शब्द अपनाया गया और फिर उसके तद्भव, संस्कृत विदेशी, आदि एक या अनेक स्रोतों के पर्याय अपनाए गए।

तीसरी स्थिति यह है कि पहले विदेशी शब्द हमारी भाषा में आया और फिर उसकी देखा-देखी तत्सम, तद्भव या विदेशी पर्याय एक या अनेक स्रोतों के बाद में अपनाए गए।

चौथा अध्याय

शब्द-भेद गत विश्लेषण

व्याकरण में शब्द-भेद के अन्तर्गत सर्वनाम, संज्ञा, विशेषण, क्रिया और **अव्यय ये पाँच विभेद** किए गए हैं। एक विभेद का शब्द दूसरे विभेद के शब्द का पर्याय नहीं हो सकता इस निष्कर्ष पर हम पहले ही पहुँच चुके हैं। इस दृष्टि से पर्याय किसी एक शब्द-भेद के शब्द ही परस्पर हो सकते हैं। हाँ, यह बात दूसरी है कि कोई शब्द दो या अधिक शब्द-भेदों में अपने एक ही रूप में प्रयुक्त होता हो और इस प्रकार उसके विभिन्न शब्द भेदों वाला होने के कारण उसके उन क्षेत्रों में अलग अलग पर्याय भी हों। उदाहरण के लिए "कोई" शब्द लीजिए। यह सर्वनाम भी है और अव्यय भी। सर्वनाम होने पर यह **कौन** का पर्याय होता है और अव्यय होने पर **लगभग** का पर्याय होता है। इसी प्रकार "घटना" जब स्त्रीलिंग संज्ञा रूप में प्रयुक्त होता है तो उसका पर्याय **'वाक्या'** होता है और क्रिया रूप में उसका पर्याय **'होना'** होता है।

पिछले अध्याय में हम देख चुके हैं कि हमारे यहाँ पर्याय किन किन स्रोतों से आये हैं। व्याकरणगत शब्द-भेद के प्रायः हर भेद के अन्तर्गत हम देखते हैं कि कुछ पर्याय मालाएँ ऐसी हैं जिनके पर्याय शब्द एक ही स्रोत के हैं। कुछ ऐसे भी हैं जिन के पर्याय दो स्रोतों के हैं। कुछ ऐसी मालाएँ भी हैं जिनके तीन, चार या पाँच स्रोतों के पर्याय शब्द हैं। इतना होने के उपरान्त फिर भी हम देखते हैं कि भिन्न भिन्न भेदों में विशिष्ट दो, तीन, चार या एक ही स्रोत के पर्यायों की बहुलता है।

(अ) सर्वनाम पर्याय

हिन्दी में गिनती के ११ सर्वनाम हैं और वे सभी तद्भव हैं[१]—आप, कुछ, कोई, कौन, क्या, जो, तू, मैं, यह, वह और सो। इन सर्वनामों में आप, तू और मैं पुरुषवाचक; यह, वह और सो निश्चय वाचक; कुछ और कोई अनिश्चयवाचक;

---

१. **हिंदी व्याकरण (संशोधित संस्करण) कामताप्रसाद, गुरु पृ० ८५**

कौन और क्या प्रश्नवाचक तथा जो सम्बन्धवाचक है। आप निजवाचक सर्वनाम भी है।

पुरुषवाचक एकवचन सर्वनाम मैं, तू, वह, और यह क्रमात् अपने बहुवचन रूप हम, तुम, ये और वे के पर्याय कुछ अवस्थाओं में मान लिए जाते हैं। यह उस समय होता है जब ये बहुवचन आदरार्थक रूप में प्रयुक्त होते हैं। निज-वाचक "आप" तो सभी पुरुषवाचक (एकवचन तथा बहुवचन) सर्वनामों का पर्याय होता है। निश्चयवाचक "वह" और "सो" पर्यायों की तरह प्रयुक्त होते ही हैं। जैसे—

(क) आप जो न करें वह थोड़ा है।

(ख) आप जो न करें सो थोड़ा है।

अन्य सर्वनाम पर्याय कम ही देखने में आते हैं। कुछ अवसरों पर 'कुछ' और 'कोई' तथा 'कौन' और 'क्या' भी पर्यायों की तरह प्रयुक्त होते हैं। हम यह भी देखते हैं कि कुछ अवस्थाओं में अव्यय शब्द भी सर्वनाम का स्थान ग्रहण कर लेते हैं। जैसे—महाराज आप वहाँ पहुँचे। 'आप' सर्वनाम के स्थान पर यहाँ 'स्वयं' अव्यय परिवर्त्य है परन्तु पर्याय नहीं है। हिन्दी में सर्वनाम पर्याय गिनती के ही हैं और वे सब एक ही अर्थात् तद्भव स्रोत के हैं।

(आ) संज्ञा पर्याय

व्यक्तिवाचक, जातिवाचक, भाववाचक, समूहवाचक और द्रव्यवाचक ये पाँच भेद संज्ञाओं के मुख्य रूप से हिन्दी व्याकरणों में बतलाए गए हैं। इन सभी विभेदों में हमें पर्याय शब्द मिलते हैं।

आ (१) व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ

व्यक्तिवाचक संज्ञा किसी व्यक्ति का सूचक संकेत होता है जो बहुधा अर्थहीन होता तथा समझा है, मूलतः भले ही वह अर्थवान क्यों न रहा हो। पौराणिक व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ और उनके पर्याय संस्कृत से सीधे हमारे यहाँ आए हैं। जैसे :—

१. ब्रह्मा, अम्बुज, चतुरानन, पद्मयोनि, विधाता, विधि, स्वयम्भू, आदि
२. इन्द्र, देवपति, देवराज, दैत्यारि, मघवा, संक्रदन, सुरेश, सुरेन्द्र आदि
३. सरस्वती, वागेश्वरी, वाग्देवी, वीणापाणि, शारदा, हंसवाहिनी आदि
४. विष्णु, चक्रपाणि, चतुर्भुज, जगन्नाथ, धन्वी, शेषशायी आदि
५. गंगा, भागीरथी, जाह्नवी, मन्दाकिनी, सुरसरि, त्रिपथगा आदि।

उक्त तथा हिन्दी पर्यायवाची कोश के स्वर्गादिवर्ग तथा देवावतार वर्ग में दी गई अन्य व्यक्तिवाचक संज्ञक पर्याय मालाओं का अवलोकन करने पर हम देखते हैं कि ये मालाएँ शुद्ध संस्कृत पर्यायों की हैं। इनके तद्भव, देशज, विदेशी आदि पर्याय नहीं के समान हैं।

व्यक्तिवाचक संज्ञाओं को मान्यता समाज वस्तुओं की सही पहचान तथा भ्रम के निवारणार्थ देता है। ऐसा संकेत इच्छानुसार बदला भी जा सकता है और उसके अतिरिक्त नया भी रखा जा सकता है। यदि एक घर में मालिक और नौकर का नाम एक ही होता है तो नौकर अपना नाम बदल या दूसरा भी रख लेता है। प्रेमचंद, सुमित्रानन्दन पंत, शान्तिप्रिय द्विवेदी आदि साहित्यकारों ने अपने यह नाम अपनी इच्छानुसार ही रखे हैं जो उनके मूल नामों के पर्याय हैं। कुछ लोगों के उपनाम भी होते हैं। देवीदास का उपनाम बच्चे महाराज और रहमतअली का उपनाम बुद्धूमियाँ।

ऐसे व्यक्तिवाचक संज्ञक पर्याय एक या अधिक से अधिक दो स्रोतों के होते हैं। क्योंकि दो से अधिक नाम प्रायः किसी के इस युग में नहीं रखे जाते हैं। वे दोनों नाम एक ही स्रोत के हो सकते हैं या फिर दो स्रोतों के।

कुछ नगरों के नाम संस्कृत तत्सम शब्द थे। बाद में वे मुख्य रूप से उनके तद्भव रूपों से विख्यात हुए। जैसे—

संस्कृत	तद्भव
पाटलिपुत्र	पटना
पुष्यपुर	पेशावर
मधुपुरी	मथुरा
लक्ष्मणपुर	लखनऊ
	आदि आदि

यहाँ भी दो—संस्कृत और तद्भव—स्रोतों के पर्याय हैं। हाँ, यह बात ध्यान रखने की है कि एक स्रोत के एक से अधिक पर्याय भी हो सकते हैं। बनारस तद्भव के वाराणसी तथा काशी दो संस्कृत पर्याय हैं। इस प्रकार यह भी दो स्रोतों के पर्याय हैं।

स्थानों के नए नाम आवश्यकतानुसार शासक और जनता भी रख लेती है। जैसे 'अयोध्या' का 'फैजाबाद', 'प्रयाग' का 'इलाहाबाद', 'बम्बई' का 'बाम्बे' आदि आदि। ऐसे पर्याय भी दो स्रोतों से अधिक के नहीं होते। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अधिकतर व्यक्तिवाचक संज्ञक पर्याय एक या अधिक से अधिक दो स्रोतों के हिन्दी में हैं।

आ (२) जातिवाचक संज्ञाएँ

'हिन्दी शब्द सागर' का अवलोकन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जातिवाचक संज्ञक पर्यायों में प्रायः सभी स्रोतों ने योग दिया है। यह तथ्य है कि व्यवहार में हर आदमी अन्य शब्दों की अपेक्षा जातिवाचक संज्ञाओं का अधिक उपयोग करता है। दूसरे यह कि दैनिक व्यवहार में उर्दू प्रेमी अरबी-फारसी की संज्ञाओं, अँगरेजी प्रेमी अँगरेजी भाषा की संज्ञाओं और सामान्य व्यक्ति तद्भव-देशज संज्ञाओं का प्रयोग करता है। संस्कृत प्रेमी संस्कृत जातिवाचक संज्ञाओं का दैनिक व्यवहार में तो कम ही प्रयोग करते हैं परन्तु साहित्य में उनका भी प्रयोग प्रचुरता से मिलता है। यही कारण है कि अपनी भाषा में जातिवाचक सँज्ञाओं के पाँच तथा चार स्रोतों के पर्याय यथेष्ट मिलते हैं। जैसे—

संस्कृत	तद्भव	अरबी	फारसी	अँगरेजी
बंदीगृह, कारा	बन्दीघर	हवालात	क़ैदख़ाना	जेल
स्नानगृह	नहानघर	हमाम	गुसलखाना	बाथरूम
सेवक, दास	टहलुआ, चैरा	अरदली	नौकर	सर्वेंट
अन्तःपुर, रनिवास	रनवास	हरम	जनानखाना	—
ग्राम	गाँव	मौजा	देहात	—
संसार, जगत्	जग	जहान	दुनियाँ	—
न्यायालय	कचहरी	अदालत	—	कोर्ट
भवन	कोठी	इमारत	—	बिल्डिंग
प्रकाश	उजाला	रोशनी	—	लाईट

आदि आदि

जातिवाचक संज्ञाओं में तीन स्रोतों से आनेवाले पर्याय प्रचुर हैं। भिन्न-भिन्न तीन तीन स्रोतों के पर्याय उदाहरणों से यह तथ्य निरूपित हो जाता है। जैसे—

संस्कृत, तद्भव और देशज पर्याय

संस्कृत	तद्भव	देशज
श्वान	कुकुर	कुत्ता
मूषक	मूसा	चूहा
नीड़	घोंसला	खोता

संस्कृत, तद्भव और फारसी पर्याय

संस्कृत	तद्भव	फारसी
वर्ष	बरस	साल
शुक, कीर	सुग्गा	तोता
तुला	तकड़ी	तराजू

संस्कृत तद्भव और अरबी पर्याय

संस्कृत	तद्भव	अरबी
दुर्ग, कोट	गढ़	किला
प्रांगण, अजिर	आँगन, चौक	सहन
नौका	नाव	किश्ती

संस्कृत, देशज और फारसी पर्याय

संस्कृत	देशज	फारसी
ध्वजा	झंडा	निशान
सिंहासन	गद्दी	तख्त
सोपान	सीढ़ी	ज़ीना

संस्कृत, फारसी और अँगरेजी पर्याय

संस्कृत	फारसी	अँगरेजी
कार्यालय	दफ्तर	आफिस
क्रीड़ास्थल	मैदान	ग्राउण्ड
शासन	सरकार	गवर्नमेन्ट

संस्कृत, अरबी और अँगरेजी पर्याय

संस्कृत	अरबी	अँगरेजी
प्रतिलिपि	नकल	कापी
तिथि	तारीख	डेट
कर, शुल्क	महसूल	टैक्स

उक्त सूचियों में दिए हुए अधिकतर संस्कृत शब्द तथा अन्य जातिवाचक संस्कृत शब्द बोल-चाल की भाषा में क्वचित् ही प्रयुक्त होते हैं। हाँ, साहित्य में अवश्य

उनका स्थान सुदृढ़ है। अन्य स्रोतों के उक्त सूचियों में दिए हुए जातिवाचक पर्याय तथा अन्य जातिवाचक पर्याय भी बोल-चाल और साहित्य दोनों में अपना सुरक्षित स्थान बना लिए हैं।

दो स्रोतों से आनेवाले पर्याय हिन्दी भाषा में सीमित मात्रा में ही हैं। सामान्यतः तीन, चार और पाँच स्रोतों वाले जातिवाचक पर्याय ही अधिक हैं। दो दो स्रोतों वाले पर्यायों के भी कुछ उदाहरण देखें :—

संस्कृत तद्भव पर्याय

नासिका	नासा, नाक
वस्त्र	कपड़ा

संस्कृत देशज पर्याय

उदर	पेट
वेणी	चोटी

संस्कृत अरबी पर्याय

नगर	शहर
सचिव, मन्त्री	वजीर

संस्कृत फारसी पर्याय

तीर, तट	किनारा
द्वार	दर, दरवाजा

संस्कृत अँगरेजी पर्याय

विश्वविद्यालय	युनिर्वसिटी
शिविर	कप

तद्भव विदेशी पर्याय

धूल	खाक, गर्द
नींव, जड़	बुनियाद

देशज अँगरेजी पर्याय

बिल्ला	बैज
फटफटिया	मोटर साइकिल

विदेशी पर्याय

चश्मा (फारसी)	ऐनक (अरबी)
जंबूरची („)	तोपची („)
मेज (फारसी)	टेबुल (अँगरेजी)
कुरसी (अरबी)	चेयर („)

उक्त सूचियों से स्पष्ट है कि प्राय: हर दो स्रोतों से आनेवाले जातिवाचक संज्ञा शब्दों में पर्यायवाची शब्द हिन्दी में मिलते हैं।

जातिवाचक संज्ञाओं में कुछ ऐसे पर्याय समूह मिलते हैं जो एक ही स्रोत वाले हैं। जैसे :—

तद्भव पर्याय

ईख, ऊख, गन्ना
अँगोछा, गमछा
छलनी, चलनी
पानीफल, सिंघाड़ा

बोलियों के माध्यम से आए हुए देशज स्रोत के पर्याय भी देखने में आते हैं।

कद्दू	लौआ
छीका	सिकहर
टोकरी	डलिया
मलाई	साढ़ी
	आदि आदि

वैसे जातिवाचक संज्ञाओं के एक स्रोत से आनेवाले पर्याय कम हैं। संस्कृत, अरबी, या अँगरेजी से आनेवाले एक ही स्रोतवाले पर्याय तो दिखाई नहीं देते।

आ (३) भाववाचक संज्ञाएँ

जातिवाचक संज्ञाओं के बाद भाववाचक संज्ञाओं का प्रयोग ही अधिक होता है। इसलिए स्वाभाविक है कि यहाँ अधिक स्रोतों के पर्याय मिलें। अँगरेजी भाववाचक संज्ञाएँ तो हिन्दी ने नहीं अपनाई इसलिए शेष स्रोतों से आई हुई भाव-वाचक संज्ञाएँ अवश्य द्रष्टव्य हैं। यहाँ एक बात यह भी ध्यान रखने की है कि इस विभेद के अधिकतर पर्याय भी बोल-चाल में प्रयुक्त होते हैं; जैसे :

संस्कृत	तद्भव	फारसी	अरबी	देशज
इच्छा, अभिलाषा कामना, स्पृहा आदि	साध चाह	ख्वाहिश आरजू	हसरत	—
प्रतिष्ठा आदि	पत	आबरू	इज्जत	—
साहस आदि	जीवट	दिलेरी	हिम्मत	—
लज्जा, व्रीड़ा आदि	लाज	शर्म	गैरत	झेंप
शीघ्रता, क्षिप्रता आदि	उतावली	—	जल्दी	हड़बड़ी

तीन स्रोतों के भाववाचक संज्ञा पर्यायों के भी कुछ नमूने देखिए—यहाँ संस्कृत, तद्भव तथा फारसी; और संस्कृत, फारसी तथा अरबी के पर्यायवाची शब्द हैं।

संस्कृत	तद्भव	फारसी	अरबी
भाग्य, नियति, प्रारब्ध आदि	भाग करम	— —	किस्मत, नसीब, तकदीर, मुकद्दर
घृणा, जुगुप्सा	घिन	—	नफरत
प्रीति, प्रेम	प्यार	—	मुहब्बत
हानि, क्षति	अकाज, घाटा	—	नुकसान, हर्ज
युद्ध	लड़ाई	जंग	—
रोग, व्याधि	—	बीमारी	मर्ज
चिंता	—	परवाह	फिक्र
दया	—	तरस	रहम
प्रसिद्धि, ख्याति आदि	—	नाम, नामवरी	शोहरत

दो स्रोतों वाले भाववाचक संज्ञक पर्यायों में संस्कृत तथा तद्भव, संस्कृत तथा फारसी; और संस्कृत तथा अरबी, पर्यायवाची शब्द अधिक मिलते हैं।

संस्कृत	तद्भव	फारसी	अरबी
प्रवाह	बहाव	—	—
पठन	पढ़ाई	—	—
आरोह	चढ़ाई, चढ़ान	—	—
अनुभव	—	—	तजुर्बा
क्रोध, रोष आदि	—	—	गुस्सा

योग्यता आदि	—	—	लियाकत, काबिलीयत
न्याय	—	—	इंसाफ
मित्रता, सत्य आदि	—	यारी, दोस्ती दोस्ताना	— —
स्वास्थ्य	—	तन्दुरुस्ती	—
आशा	—	उम्मीद	—
			आदि आदि

आ (४) समूहवाचक संज्ञा पर्याय

समूहवाचक संज्ञा शब्द हिन्दी में अन्य संज्ञा विभेदों के शब्दों की अपेक्षा बहुत कम हैं। इनके पर्याय अधिक से अधिक तीन स्रोतों के विशेषत: संस्कृत, तद्भव और फारसी के मिलते हैं। जैसे--

संस्कृत	**तद्भव**	**फारसी**
मास	महीना	माह
वर्ष	बरस	साल
सप्ताह	अठवारा	हफ्ता

दो स्रोतों वाले पर्याय हमें मुख्यत: संस्कृत तथा देशज और संस्कृत तथा अरबी के मिलते हैं। कुछ उदाहरण लीजिए—

संस्कृत	**देशज**
जनसमूह	भीड़
समह, वृन्द	झुंड, ठठ
राशि	ढेर
	आदि आदि

संस्कृत	**अरबी**
आयु	उमर
प्रजा	रिआया, रैयत
शती	सदी

दो स्रोतों के कुछ विविध पर्याय भी हैं। जैसे--

पक्ष (संस्कृत)	पखवारा (तद्भव)
दल („)	पार्टी (अँगरेजी)
सेना („)	फौज (फारसी)
	आदि आदि

ज्यादातर समूहवाचक संज्ञा पर्याय दो ही स्रोतों के हैं। एक स्रोत तक सीमित उक्त विभेद के पर्याय नहीं हैं।

आ (५) द्रव्यवाचक संज्ञा पर्याय

यहाँ हमें संस्कृत तद्भव वर्ग के पर्याय अधिकता से मिलते हैं :—

संस्कृत	तद्भव
कंचन, स्वर्ण आदि	सोना
कांस्य	कांसा, फूल
जल	पानी
घृत	घी
ताम्र	तांबा
दधि	दही
नवनीत	मक्खन
रजत, रौप्य	चाँदी
शर्करा	चीनी, खाँड
पारद	पारा

इस्पात (तद्भव) तथा फौलाद (फारसी), रांगा (तद्भव) और कलई (अरबी), धातु (संस्कृत) और मेटेल (अँगरेजी) आदि दो दो स्रोतों के पर्याय भी हिन्दी में थोड़े-बहुत हैं। तीन या चार स्रोतों के द्रव्यवाचक संज्ञा पर्याय हिन्दी में नहीं के समान हैं।

विशेषण पर्याय

व्याकरण में विशेषणों के जो तीन भेद किए गए हैं वे हैं—(१) गुणवाचक विशेषण, (२) संख्यावाचक विशेषण, (३) सार्वनामिक विशेषण। इन तीनों भेदों में पर्याय यथेष्ट रूप से मिलते हैं। अँगरेजी भाषा से हमारी हिन्दी ने विशेषण नहीं अपनाए। इस प्रकार संस्कृत, तद्भव देशज, फारसी और अरबी इन पाँच स्रोतों से पर्याय शब्द आए हैं।

इ (१) गुणवाचक विशेषण पर्याय

गुणवाचक विशेषणों के (क) गुण, (ख) अवस्था (ग) स्थान और (घ) काल वाचक विशेषण ये चार भेद हैं।

प्रथमत: हम यहाँ ऐसे पर्याय देखते हैं जो एक ही स्रोत—संस्कृत के हैं। तद्भव, देशज, अरबी, फ़ारसी के ऐसे शब्द हिन्दी में नहीं हैं जो उनके पर्याय कहे जा सकें; जैसे—

आदरणीय, मान्य, वंदनीय, सम्मान्य
कृतघ्न, अकृतज्ञ
विरोधी, विपक्षी, प्रतिद्वन्द्वी, प्रतिपक्षी, प्रतियोगी
दु:खद, दु:खप्रद, दु:खदायी, पीड़क, संतापी
वांछनीय, स्पृहणीय
स्वीकार्य, अंगीकार्य, ग्रहणीय
स्वाभाविक, नैसर्गिक, प्राकृतिक
मंगलकारी, कल्याणकारी, शुभ

आदि आदि

एक स्रोतीय देशज तथा तद्भव गुणवाचक विशेषण पर्याय भी कुछ देखने में आते हैं; जैसे—

ऐंचाताना	भेंगा
कैरा	कंजा
चुंधा	चोंधइल
उथला	छिछला
	आदि आदि

दो स्रोतों से आए हुए गुणवाचक पर्याय विशेष रूप से संस्कृत और तद्भव के मिलते हैं; जैसे—

संस्कृत	तद्भव
घृणित, जुगुप्सित	घिनौना
असत्य, मिथ्या	झूठ
वक्र, तिर्यक	टेढ़ा, तिरछा
अनयन, नेत्रहीन	अन्धा
बधिर	बहरा
वामन	बौना, नाटा
	आदि आदि

हिन्दी में सामान्यत: गुणवाचक पर्याय तीन स्रोतोंवाले मिलते हैं। ऐसे पर्याय संस्कृत, तद्भव और फारसी तथा संस्कृत तद्भव और अरबी के प्रमुख हैं; जैसे—

संस्कृत, तद्भव, फारसी (गुणवाचक विशेषण पर्याय)

संस्कृत	**तद्भव**	**फारसी**
सम, तुल्य	पटतर, सरीखा	बराबर
दुर्बल	दुबला	कमज़ोर
भीरु	कायर, डरपोक	बुज़दिल
		आदि आदि

संस्कृत, तद्भव, अरबी (गुणवाचक विशेषण पर्याय)

संस्कृत	**तद्भव**	**फारसी**
अद्भुत, विचित्र	अनोखा, निराला	अजीब
शुद्ध, विशुद्ध	खरा	असल, खालिस
उद्यत, सन्नद्ध, तत्पर	उतारू	तैयार, मुस्तैद
		आदि आदि

अवस्थावाचक विशेषण पर्यायों में मुख्यतः गुणवाचक पर्यायों की तरह तीन ही स्रोतों वाले प्रायः शब्द मिलते हैं। इनमें संस्कृत, तद्भव, फारसी और संस्कृत, तद्भव, अरबी स्रोतों के पर्याय मुख्य हैं। जैसे—

संस्कृत, तद्भव, अरबी (अवस्थावाचक विशेषण पर्याय)

संस्कृत	**तद्भव**	**अरबी**
स्वच्छ	सुथरा	साफ
मंद	धीमा	सुस्त
स्वस्थ	चंगा	तंदुरुस्त
		आदि आदि

संस्कृत, तद्भव, फारसी (अवस्थावाचक विशेषण पर्याय)

संस्कृत	**तद्भव**	**फारसी**
गुरु	भारी	वजनी
निर्धन	कंगला	गरीब, मुफलिस
विख्यात	नामी	मशहूर
		आदि आदि

अवस्थावाचक विशेषण पर्याय संस्कृत, तद्भव दो स्रोतोंवाले वर्ग के भी मिलते हैं। जैसे—

संस्कृत	तद्भव
एकाक्ष	काना, कनेठा
सघन	घना, गफ
श्याम	साँवला, काला
	आदि आदि

ऐसे पर्याय वर्ग कम ही हैं

स्थानवाचक विशेषण पर्याय दो स्रोतों वाले तथा तीन स्रोतों वाले मिलते हैं। दो स्रोतों वालों में संस्कृत, तद्भव वर्ग के और तीन स्रोतों वालों में संस्कृत, तद्भव तथा फारसी वर्ग के मिलते हैं। जैसे—

संस्कृत	तद्भव
गम्भीर	गहरा, अथाह
दीर्घ	लम्बा
विस्तृत	चौड़ा
नत	नीचा

और

संस्कृत	तद्भव	फारसी
उच्च	ऊँचा	बुलन्द
समतल	चौरस	हमवार
संकीर्ण	सँकरा	तंग
आन्तरिक	भीतरी	अन्दरूनी
		आदि आदि

कालवाचक विशेषणों में से दो ही स्रोतों वाले पर्याय मिलते हैं। यह या तो संस्कृत और तद्भव स्रोतों के हैं या संस्कृत और फारसी के होते हैं। जैसे—

संस्कृत	तद्भव
नव, नवीन, नूतन	नया
प्राचीन, पुरातन	पुराना, दिन्नी
गत, व्यतीत	पिछला, बीता
आगामी, भविष्यत्	अगाऊ, आनेवाला

और

संस्कृत	फारसी
त्रैमासिक	तिमाही
दैनिक	रोजाना
मासिक	माहवारी
वार्षिक	सालाना
साप्ताहिक	हफ्तावारी
	आदि आदि

स्पष्ट है कि अरबी के कालवाचक विशेषण शब्द हिन्दी में नहीं आए हैं।

इ (२) संख्यावाचक विशेषण

व्याकरण में संख्यावाचक विशेषणों के तीन भेद हैं—(१) निश्चित संख्यावाचक (२) अनिश्चित संख्यावाचक, और परिमाणबोधक। निश्चित संख्यांवाचक विशेषणों के भी पाँच उपभेद इस प्रकार किए गए हैं—गणनावाचक, क्रमवाचक, आवृत्तिवाचक, समुदायवाचक और प्रत्येक बोधक।

गणनावाचक विशेषणों के भी दो भेद हैं। पूर्णांकबोधक और अपूर्णांक बोधक। पूर्णांक बोधक विशेषणों में हमें गिनती के ही पर्याय मिलते हैं।

संस्कृत	तद्भव	फारसी
शत	सौ	—
सहस्र	—	हजार

एक, दो, तीन तथा चार संख्यावाचक विशेषणों के पर्याय है ही नहीं।

अपूर्णांक बोधक विशेषणों (जैसे—पाव, आधा, पौना, सवा, डेढ़ आदि) के पर्याय भी हिन्दी में नहीं हैं।

क्रमवाचक विशेषण पर्याय हिन्दी में थोड़े से हैं। इनमें से कुछ संस्कृत तद्भव स्रोतों के हैं और कुछ संस्कृत तद्भव और फारसी स्रोतों के; जैसे—

संस्कृत	तद्भव	फारसी
प्रथम	पहला	अव्वल
द्वितीय	दूसरा	दोयम
तृतीय	तीसरा	सोयम
चतुर्थ	चौथा	—
पंचम	पाँचवा	—
षष्ठ	छठा	—
दशम	दसवाँ	—

आदि आदि

आवृत्तिवाचक विशेषणों के सिर्फ संस्कृत तद्भव पर्याय हिन्दी में मिलते हैं। जैसे—

संस्कृत	तद्भव
द्विगुण	दुगना
त्रिगुण	तिगुना
चतुर्गुण	चौगुना

आदि आदि

समुदायबोधक संख्यावाचक विशेषण कुछ पूर्णांक बोधक विशेषणों के पर्याय माने जाते हैं; जैसे—

कोड़ी	बीस
गाही	पाँच
जोड़ी	दो
छक्का	छः
दर्जन (अं० डज़न)	बारह
सैकड़ा	सौ

आदि आदि

ऐसे पर्याय अधिकतर तद्भव स्रोत के होते हैं। कुछ संस्कृत तद्भव स्रोतों के भी पर्याय हैं। जैसे—शतक, सैकड़ा; सहस्र, हजार आदि।

अनिश्चित संख्यावाचक पर्याय सामान्यतः तीन स्रोतों वाले हिन्दी में हैं और ऐसे पर्यायों में प्रमुखता संस्कृत, तद्भव तथा फारसी शब्दों की है; जैसे—

संस्कृत	तद्भव	फारसी
अधिक, नाना..	बहुत	ज्यादा
असंख्य, अगणित..	अनगिना	बेशुमार
अन्य..	दूसरा, और	दीगर
सर्व, समस्त..	सब, सारा, समूचा	तमाम

आदि आदि

कुछ दो स्रोतों वाले पर्याय भी हैं; जैसे—आदि और वगैरा, अमुक और फलां आदि।

इ (३) सार्वनामिक विशेषण

पुरुषवाचक और निजवाचक सर्वनामों को छोड़कर शेष सर्वनाम जब विशे-

षिणों की तरह प्रयुक्त होते हैं तब उन्हें सार्वनामिक विशेषण कहते हैं। अपना और निज, ऐसा और जैसा (जैसे—यहाँ आप जैसे (या ऐसे) महात्माओं की कमी है।) आदि उँगलियों पर गिनने योग्य ही हिन्दी में सार्वनामिक विशेषण पर्याय हैं।

क्रिया पर्याय

हिन्दी क्रियाएँ धातुओं से बनती हैं। धातुएँ दो प्रकार की मानी गई हैं—मूल धातु और यौगिक धातु। हिन्दी में मूल धातु तथा यौगिक धातुओं से बने हुए पर्याय मिलते हैं।

मूल धातुओं से बनने वाले क्रिया पर्याय शब्दों के कुछ उदाहरण ये हैं।

कीनना	खरीदना
खाना	भखना
बोना	रोपना
काटना	डसना
जूझना	लड़ना
बिसरना (अक०)	भूलना
सहना (,,)	झेलना
गलना (,,)	पिघलना
	आदि आदि

यौगिक धातुओं से बने हुए क्रिया पर्याय शब्दों की बानगी भी देखी जा सकती है।

छोड़ना	त्यागना
सींचना	पनियाना
जोड़ना	साँटना
पुकारना	गुहारना
डरना	सहमना
नाचना	थिरकना
बीतना	गुजरना
	आदि आदि

क्रियाएँ वस्तुतः किसी भाषा की अपनी सम्पत्ति होती हैं अन्य स्रोतों से नहीं अपनाई जातीं। हाँ इतना अवश्य है कि अपनाए हुए विदेशी या आकर भाषा के

शब्दों से बना अव्यय ली जाती हैं। ऐसी क्रियाएँ यौगिक धातुओं से बनी कही जाती हैं; जैसे—

परिवर्तित करना	बदलना
चिह्नित करना	दागना
प्राप्त करना	वसूलना
बोलना, कहना	फरमाना
परखना	आज़माना

आदि आदि

प्रेरणार्थक क्रियाएँ यौगिक धातुओं से बनी होती हैं। ऐसी क्रियाओं के पर्याय भी हिन्दी में हैं। जैसे—

उलटवाना	पलटवाना
खिचवाना	तनवाना
बिलवाना	मथवाना
भेजवाना	पठवाना

आदि आदि

किसी एक ही धातु से बनी हुई दो-दो प्रेरणार्थक क्रियाएँ पर्यायों की तरह प्रयुक्त होती हैं। कुछ ऐसी पर्याय क्रियाएँ हैं—

कहलाना	कहलवाना
दिखलाना	दिखलवाना
सिखवाना	सिखलाना
बिठलाना	बिठवाना
सुताना	सुतवाना

आदि आदि

(उ) अव्यय पर्याय

अव्ययों के क्रिया-विशेषण, सम्बन्धसूचक, समुच्चयबोधक और विस्मयादिबोधक चार भेद किए गए हैं।

उ (१) क्रिया-विशेषण पर्याय

क्रिया-विशेषणों के भी स्थानवाचक, कालवाचक, परिमाणवाचक और रीतिवाचक ये चार उपभेद किए गए हैं। स्थानवाचक अव्ययों में एक स्रोतीय

पर्याय भी हैं, दो स्रोतीय भी और तीन स्रोतीय भी हैं। एक स्रोत वाले तद्भव पर्याय हैं, दो स्रोतों वाले संस्कृत और तद्भव पर्याय हैं तथा तीन स्रोतों वाले संस्कृत, तद्भव तथा विदेशी पर्याय हैं।

(क)

तद्भव	तद्भव
इधर	यहाँ
उधर	वहाँ
नीचे	तले
ऊपर	पर
किधर	कहाँ

आदि आदि

(ख)

संस्कृत	तद्भव
दूर	परे
सहित	साथ
सम्मुख, समक्ष	आगे, सामने

आदि आदि

(ग)

संस्कृत	तद्भव	अन्य
निकट, समीप	पास	नजदीक (फा०) करीब (अ०)
अभ्यन्तर	भीतर	अन्दर (फा०)

आदि आदि

कालवाचक क्रिया-विशेषणों में हमें दो, तीन और चार स्रोतों के पर्याय मिलते हैं। यहाँ सभी स्रोतों के पर्याय दिखायी देते हैं। जैसे :—

संस्कृत	तद्भव	देशज	अरबी	फारसी
बहुधा, प्रायः	—	—	अक्सर, अमूमन	—
सदा, सर्वदा	—	—	हमेशा	—
प्रथमतः	आगे, पहले	—	—	—
पुनः	फिर	—	—	दोबारा
सतत, निरन्तर	—	लगातार	—	बराबर
सहसा, अकस्मात्	अचानक	—	—	एकबारगी
तुरंत, तत्काल	अभी	चटपट		

		झटपट	फौरन	—
		फटाफट		
प्रातः	सबेरे	तड़के	सुबह	—
				आदि आदि

एक ही स्रोत तक सीमित पर्याय इस वर्ग में नहीं हैं। परिमाणवाचक विशेषण पर्यायों में पाँच, चार, तीन और दो स्रोतों के पर्याय अधिक मिलते हैं। बानगी देखिए :—

संस्कृत	तद्भव	देशज	फारसी	अरबी
नितांत, सर्वथा	निरा	निपट	एकदम	बिल्कुल
अतिरिक्त	बिना	—	सिवा	बगैर, अलावा
किंचित्	कुछ	—	कम	ज़रा
अधिक	बहुत	—	ज्यादा, बेश	—
यथेष्ट, पर्याप्त	—	भरपूर	—	काफी
क्रमशः	—	—	सिलसिलेवार	—
केवल, मात्र	—	—	—	फकत, सिर्फ
तथा, एवं	और	—	—	
				आदि आदि

रीतिवाचक विशेषणों पर्यायों में संस्कृत अरबी, तथा संस्कृत-फारसी स्रोतों के पर्याय मिलते हैं। देखने में यह भी आता है कि ऐसे पर्याय तीन से अधिक स्रोतों के हिन्दी में नहीं हैं।

(क)

संस्कृत	अरबी
अवश्य, अवश्यमेव	ज़रूर, यकीनन
बलात्, बलपूर्वक	जबरन
विधितः, विधानानुसार	कानूनन
उदाहरणार्थ	मसलन
अतः, अतएव	लिहाजा, इसलिए (तद्भव)
निसन्देह	बिलाशुबहा, बेशक (फा०)

(ख)

संस्कृत	फारसी
वस्तुतः	दरअसल
कदाचित्, स्यात्	शायद
क्रमशः	सिलसिलेवार
कदापि	हरगिज,
	कभी नहीं (तद्भव)
	आदि आदि

हिन्दी में संज्ञाओं में परसर्ग आदि जोड़ कर क्रिया-विशेषण बना लिए जाते हैं। जैसे—जबरदस्ती से, क्रम से, वास्तव में, बिना सन्देह, उदाहरण के लिए, विधान के अनुसार आदि। इन्हें स्वतन्त्र शब्दों की संज्ञा नहीं दी जा सकती। इसीलिए इन्हें ऊपर की सूचियों में स्थान नहीं दिया गया है।

उ (२) सम्बन्धसूचक पर्याय

यहाँ हमें तीन स्रोतीय पर्यायों में मुख्यतः संस्कृत, तद्भव, फारसी और संस्कृत तद्भव, अरबी तथा चार स्रोतीय पर्यायों में संस्कृत, तद्भव, फारसी और अरबी के शब्द मिलते हैं। जैसे :—

संस्कृत	तद्भव	फारसी	अरबी
अपेक्षाकृत	से	बनिस्बत	—
विपरीत, विरुद्ध	उलटे	खिलाफ	—
समक्ष, सम्मुख	सामने	रूबरू	—
द्वारा	से	—	जरिये
भाँति	नाईं	—	तरह
उपरान्त, पश्चात्	पीछे	—	बाद
हेतु, निमित्त	लिए	—	खातिर, वास्ते
मात्र, केवल	निरा, बस	—	सिर्फ, फकत, महज
कारण	मारे	बदौलत	सबब
विषय	मद्धे	बाबत	निस्बत
निकट, समीप	पास	नजदीक	करीब, करीबन
			आदि आदि

दो स्रोतों वाले संस्कृत तद्भव पर्याय भी इस वर्ग के हैं। संस्कृत, तद्भव स्रोतों के पर्यायों के कुछ नमूने भी देखें :—

संस्कृत	तद्भव
अधः	नीचे, तले
पर्यन्त	तक, लौं
सदृश, समान	सरीखा, जैसा, ऐसा, सा आदि आदि

समुच्चय बोधक पर्याय तीन स्रोतों वाले ही मिलते हैं।

उ (४) विस्मयादि बोधक पर्याय

विस्मयादि-बोधक अव्यय किसी न किसी भाव की अधिकता या तीव्रता सूचित करने के लिए होते हैं वस्तुतः इनमें अर्थाभाव होता है। वैयाकरण कामता प्रसाद गुरु लिखते हैं. . . .इनका प्रयोग केवल वहीं होता है जहाँ वाक्य के अर्थ की अपेक्षा अधिक तीव्र भाव सूचित करने की आवश्यकता होती है।[1] सच पूछा जाए तो कहा जा सकता है कि इस वर्ग के अव्यय ध्वनियाँ मात्र हैं। एक एक भाव की सूचक एकाधिक ध्वनियाँ हिन्दी भाषी व्यवहृत करते हैं परन्तु इन्हें पर्याय मानने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि ये अर्थ-प्रधान नहीं हैं बल्कि मनोविकार का अनुमान करने वाली ध्वनियाँ भर हैं। "ओह" और "हाय" व्यथासूचक हैं, 'आ' और 'अरे' आश्चर्य-सूचक आदि विस्मय बोधक आदि पर्याय नहीं हैं।

पर्यायों के शब्द-भेदगत विश्लेषण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अधिकतर हिन्दी में प्रचलित तद्भव देशज, फारसी, अरबी तथा अँगरेजी शब्दों के संस्कृत पर्याय क्रिया भेद के अतिरिक्त प्रायः अन्य भेद-उपभेदों में मिलते हैं। अरबी, फारसी के जो शब्द अपनाए हैं उनमें से थोड़े ही ऐसे हैं जिनके उसी स्रोत के पर्याय भी अपनाए गए हैं। प्रायः ऐसा हुआ है जब हम ने अपने किसी तद्भव या संस्कृत शब्द का फारसी पर्याय अपनाए हैं तो अरबी पर्याय नहीं अपनाए और यदि अरबी पर्याय अपनाए हैं तो फारसी नहीं अपनाए। लेकिन ऐसे उदाहरण हैं जहाँ हमने उक्त दोनों स्रोतों से पर्याय ले लिए हैं। अँगरेजी पर्याय तो हमें मुख्यतः कुछ जातिवाचक संज्ञाओं के ही मिलते हैं। कुछ देशज पर्याय और कुछ तद्भव पर्यायों तथा कुछ संस्कृत पर्यायों की यह स्वाभिमानता भी देखने में आती है कि उन्होंने अन्य किसी स्रोत का पर्याय ग्रहण ही नहीं किया।

---

१. हिन्दी व्याकरण (संवत् १९८४ वि०) पृ० २१३

पाँचवा अध्याय

कार्य-क्षेत्र और गतिविधि

(क) कार्य-क्षेत्र

साहित्य के विविध अंगों में पर्याय

पर्यायों का क्षेत्र मुख्यतः ललित-साहित्य है। साधारणतया कविता, उपन्यास गद्य काव्य, नाटक आदि में ही पर्यायवाची शब्द दिखाई देते हैं। गणित, भूगोल, इतिहास, भौतिक-शास्त्र, रसायन-शास्त्र, वनस्पति-शास्त्र, वैद्यक-शास्त्र, शरीर-शास्त्र आदि शास्त्रों में प्रायः पर्याय शब्द कम ही देखने को मिलते हैं। वैज्ञानिक साहित्य में पर्यायों के प्रयुक्त न होने के दो कारण हैं। एक तो यह कि उसका शब्द-भंडार निश्चित तथा सीमित होता है और दूसरे यह कि वह तथ्य-परक होता है। तथ्य-परक साहित्य में यथार्थता पर ध्यान विशेष रूप से रहता है। इस बात पर विशेष रूप से दृष्टि रखी जाती है कि उन तथ्यों के सम्बन्ध में किसी प्रकार के भ्रम की गुंजाइश न रहे। शब्दों के विशेषतः पर्याय शब्दों के प्रयोग से कुछ अवस्थाओं में भ्रम उत्पन्न होता है क्योंकि ऐसे पर्याय यथेष्ट हैं जिन में विवक्षागत अन्तर होता है और जबकि लगाने वाले किसी एक सीधी सी बात का आशय भी भिन्न भिन्न लगा लेते हैं। वैज्ञानिक साहित्य में किसी पद, वाक्य आदि के दो या और अधिक अर्थ लगाने से बहुत बड़ा अनर्थ हो सकता है। यही कारण है कि वैज्ञानिक साहित्य में पर्यायों की पैठ नहीं हो सकी। एक उदाहरण लीजिए—

"लज्जावती का वृक्ष लता के **समान होता है**। इसके **पते** इमली अथवा खैर के **पते के समान होते हैं**। स्पर्श करने पर वह लज्जा के कारण **मुरझा जाती है**। यह दो प्रकार की होती है। एक **काटे** की और दूसरी बिना **काटे** की। हाथ लगते ही यह सिकुड़ **जाती है** और मालूम पड़ता है कि एकदम **मुरझा** गई है।"[१]

—हनुमानप्रसाद शर्मा

---

१. वनस्पति विज्ञान (नागरी प्रचारिणी सभा) पृ० १०९

उक्त अनुच्छेद में हम देखते हैं कि किसी शब्द के पर्याय का प्रयोग नहीं किया गया है जबकि समान, होना, जाना, पत्ता, मुरझाना, काटा, आदि शब्दों की दो या अधिक बार आवृत्तियाँ हुई हैं। एक और उदाहरण लीजिए —

'दो या दो से अधिक पदार्थों को किसी भी अनुपात में मिलाकर मिश्र बना सकते हैं। पर यौगिक एक नियत अनुपात में मिलाकर बनता है। यदि लोहे को गंधक के साथ तपावें तो लोहे का ६३.५ भाग गंधक के ३६.५ भाग से मिलकर बनता है।

'यदि किसी अवयव की मात्रा अधिक है तो वह अविकृत रह जाता है। इस प्रकार मिश्र अवयव अनिश्चित अनुपात में मिले होते हैं। और यौगिक के अवयव एक निश्चित अनुपात में ही मिले होते हैं।[१]

—फूलदेव सहाय वर्मा

इस पैरे में अधिक, मिश्र, अनुपात, बनना, यौगिक, गंधक, लोहा, भाग, अवयव, आदि शब्दों की आवृत्तियाँ हुई हैं, उनके पर्याय नहीं व्यवहृत किए गए हैं।

वैज्ञानिक साहित्य के साथ साथ बोल-चाल और बाल साहित्य में भी पर्यायों का कम ही प्रयोग होता है। कारण दोनों का एक ही है कि उक्त दोनों क्षेत्रों में बहुत थोड़े शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

तथ्य-परक अन्य साहित्य (जैसे—समालोचना या सैद्धान्तिक विवेचन) में भी पर्याय नहीं होते। यहाँ भी वैज्ञानिक साहित्य की भाँति यथार्थता पर दृष्टि रखी जाती है। यही कारण है कि श्यामसुन्दरदास, रामचन्द्र शुक्ल, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, गुलाब राय, नगेन्द्र, नामवर सिंह आदि के समीक्षात्मक लेखों में पर्याय नहीं हैं।

ललित साहित्य और पर्याय

पर्यायों का प्रयोग विशेष रूप से ललित साहित्य में ही होता है। वस्तुतः ललित साहित्य ही उनका कार्य-क्षेत्र है। ललित साहित्य में रचना के लालित्य पर रचनाकार का विशेष ध्यान रहता है। रचना का लालित्य बहुत कुछ शब्द-मैत्री शब्दों के भावानुरूप होने तथा रसपूर्ण होने पर निर्भर होता है। शब्द मैत्री, शब्दों के भावानुरूप चयन, रचना को रसपूर्ण बनाने में पर्याय अत्यधिक सहायक होते हैं। बिना पर्यायों के शब्द-मैत्री की सम्भावना नगण्य रह जाती है। पर्यायों के भावानुरूप हुए बिना प्रखरता भी रचना में नहीं आने पाती। और यदि पर्याय

---

१. रसायन विज्ञान (अजन्ता प्रेस लि०) पृ० १४१

न हों तो एक ही शब्द की पुनरावृत्ति होते रहने से रचना भी नीरस होने लगती है। ललित साहित्य से भिन्न साहित्य में जो कुछ पर्याय शब्द दिखाई पड़ते हैं, वे ऐसे होते हैं जिनमें विवक्षागत अन्तर नहीं होता। जैसे जल और पानी, पेड़ और वृक्ष, डाली और शाखा आदि। और यदि होता भी है तो उनके उस अन्तर पर ध्यान नहीं दिया जाता है। ऊपर 'रसायन विज्ञान' नामक पुस्तक से जो अंश उद्धृत किया गया है उसमें **नियत** और **निश्चित** पर्याय हैं जिनका ललित साहित्य में विवक्षागत अन्तर है परन्तु यहाँ इस वैज्ञानिक क्षेत्र में उस अन्तर पर ध्यान ही नहीं दिया गया है।

ललित साहित्य में भाषागत चमत्कार दिखलाने की भी प्रवृत्ति होती है और पाण्डित्य प्रदर्शन की भी। चमत्कार प्रदर्शन तथा पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए समृद्ध शब्द-भण्डार की आवश्यकता होती है और शब्दों के अर्थों तथा उनके विवक्षागत अन्तरों के ज्ञान की भी आवश्यकता होती है। एक सीधी सी बात को जब चमत्कारिक रूप में या विद्वतापूर्ण रूप में कहना होगा तो यह आवश्यक होगा कि उसके कुछ शब्दों का स्थान उन के पर्यायवाची शब्दों को दिया जाए।

जिस कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास आदि में पर्यायों का प्रयोग नहीं होता बल्कि शब्दों की ही पुनरावृत्ति होती है वह रचना अपने कुछ और गुणों के कारण कुछ अवसरों पर भले ही अच्छी लगे पर अधिक सम्भव यह है कि उसमें प्रसाद, सरसता आदि गुणों का अभाव रहेगा तथा उसमें ऐसी एकरूपता आ जाएगी जिससे पढ़नेवालों का मन कुछ ऊबने लगेगा। लेखक का मूल उद्देश्य अपनी रचना को उपयोगी बनाना तो होता ही है पर वह उसमें सरसता लाना भी अपना कर्तव्य समझता है।

किसी शब्द की पुनरावृत्ति रोकने के लिए लेखक दो में से एक काम करता है। या तो वह उस शब्द के स्थान पर उसका पर्याय रखता है अथवा अभिव्यक्ति का ढंग बदल देता है। दूसरे तरीके से हमें सरोकार यहाँ नहीं है इसलिए उसकी चर्चा अनावश्यक है। परन्तु पहले ढंग अर्थात् पर्यायों के उपयोग की प्रवृत्ति अपने साहित्य के दोनों अंगों—पद्य और गद्य—में हम देखते हैं। हम देखते हैं कि हमारा साहित्यकार ज्ञात या अज्ञात रूप से इस बात के लिए सचेष्ट है कि जब वह किसी शब्द का प्रयोग कर चुका है तो पुनः उसके स्थान पर उसका पर्याय ही व्यवहृत करे।

पद्य साहित्य में पर्याय

चन्दवरदायी से लेकर आज के सभी कवियों की रचनाएँ आप देख जाइए, आप

को पग पग पर पर्यायों का चमत्कार मिलेगा। सम्भव है कि अधिकतर स्थानों पर पुनरावृत्ति के दोष के निवारणार्थ उनका प्रयोग हुआ हो परन्तु ऐसे भी प्रचुर स्थल मिलेंगे जहाँ आर्थी सूक्ष्मता, सटीकता आदि के भी वे ज्ञापक प्रतीत होंगे। हिन्दी के विभिन्न कालों के प्रमुख कवियों के कुछ पद्य यहाँ उद्धृत किए जाते हैं जिनसे पर्यायों के प्रयोग सम्बन्धी उनकी उक्त प्रवृत्ति की पुष्टि होती है।

रे अग **संग्राम** लरै वर अप्पन आयौ
अप्पह सो **समर** करै मंडुक जस पायो।[1]

—चन्दवरदायी

(१)

चेतत चेतत निकसिओ **नीरू**।
सो **जलु** निरमलु कथन कबीरू॥

—कबीर
(सन्त कबीर[2] राग गउड़ी २४-३)

(२)

है कोउ ऐसी भाँति दिखावै।
कि किमि सब्द चलत धुनि, रुन झुन ठुमुकि
ठुमुकि गृह आवै॥
कछुक बिलास बदन को **सोभा** अरुन कोटि गति पावै।
कंचन मुकुट कण्ठ मुक्तावलि मोर पंख **छबि** छावै॥
धूसर धूरि अंग अंग लीन्हे ग्वाल बाल संग लावै।
सूरदास प्रभु कहति जसोदा, भाग बड़े तै पावै॥[3]

—सूरदास

(३)

सठ साखामृग जोरि सहाई। बाँधा **सिन्धु** इहइ प्रभुताई॥
नाँघहिं खग अनेक **बारीसा**। सूर न होहिं ते सुनु सब कीसा॥

---

१. पृथ्वीराज रासो (नागरी प्रचारिणी सभा) छन्द ११५ स० ४४
२. सन्त कबीर—रामकुमार वर्म्मा पृ० २५
३. सूरसागर ३०१० । ३६२८ पृ० १२८४ (प्रथम संस्करण २०००)

मम भुज **सागर** बल जल पूरा। जहँ बूड़े बहु सुर नर सूरा।।
बीस **पयोधि** अगाध अपारा। को अस वीर जो पाइहि पारा।।

—तुसलीदास

(रामचरित मानस[1] ६-२७-१, २, ३, ४)

(४)

तुम जो जाए विदेसों छाए हम से रहे चित चोरी।
तन आभूषण **छोड़े** सबही, तज दिए पाट पटोरी।
मिलन की लग रही डोरी।।
आप मिल्याँ बिन कल न परत है **त्यागे** तिलक तमोली।
मीराँ के प्रभु मिलओ, माधो सुणज्यो अरजी मोरी।
रस बिन बिरहन दौरी।।— मीराबाई

(मीराँ माधुरी[2] १४७)

सिन्धु तरयों उनको बनरा तुम पैं धनु रेख गई न तरी।
बानर बाँधत सो न बँध्यों उन **वारिधि** बाँधि के बाट करी।

—केशव

(मधुपर्क—पृ० ६३)

(५)

पाँयनि नूपुर **मंजु** बजै कटि किंकिनि में धुनि की मधुराई।
साँवरे अंग लसे पट पीत, हिए हुलसै बनमाल सुहाई।।
माथे किरीट बड़े दृग चंचल, मन्द हँसी मुखचन्द जुन्हाई।
जे जग मन्दिर दीपक **सुन्दर** श्री ब्रज-दूलह देव सहाई।

—देव

(मधुपर्क—पृ० ७६)

(६)

दिन दस **आदर** पाइ कै करि ले आप-बखान।
जौ लौं काग सराध पख तौ लौं तो **सनमान**।।

—बिहारी

(मधुपर्क—पृ० ७९)

---

१. गीता प्रेस पृ० ८९१
२. मीराँ माधुरी पृ० ३९ (२००५ वि०)

(७)

भोर तें साँझ लौं कानन ओर **निहारति**
बावरी नेकु न हारति।
साँझ तें भोर तारनि **ताकिबो** तारनि सों
इक तार न टारति।

—घनानन्द
(घनानन्द कवित—६८)

(८)

जा **दिन** कन्त बिदेस चले गलहू न लगी न परी चरना।
ता दिन तें तन ताप रह्यो मन झूर रही **पिय** को
मिलना।

—गंग
(गंग कवित्त[1]—१६८)

(९)

प्यारी प्रभा रजनि रंजन की नगों को।
जो थी असंख्य नव हीरक से लसाती॥
तो वीचि में तपन की **प्रिय** कन्यका के।
थी चारु चूर्ण मणि मौक्तिक के मिलाती॥

—हरिऔध
(मधुपर्क[2] पृ० ८९)

(१०)

भरत से **सुत** पर भी सन्देह,
बुलाया तक न उसे जो **गेह**!
न थी हम माँ **बेटे** की चाह,
आह तो खुली न थी क्या राह!
मुझे भी भाई के **घर** नाथ
भेज क्यों दिया न **सुत** के साथ!

---

१. गंग कवित्त—बेट कृष्ण (पृ० ५०)
१. मधुपर्क (संकलनकर्ता नरोत्तमदास स्वामी) सं० १९५९ पृ० ८९

राज्य का अधिकारी है ज्येष्ठ,
राम में गुण भी हैं सब श्रेष्ठ!
भला फिर क्या मेरा **वत्स**
शान्त रस में बनता वीभत्स!

—मैथिलीशरण गुप्त
(साकेत[1]—पृ० ३३)

(११)

औरहु **सुन्दर** अति लखात
आगमन सु संध्या केरो
तापर शांत विहंग संग
मनोहर रजनी हेरो।

—जयशंकर 'प्रसाद'
(चित्राधार[2]—रजनी)

(१२)

जब खग बाला भी डालों पर झूल रही है झूला।
जब उस सुहाग **रजनी** में हो सुमन सेज पर दूल्हा॥
तब वह विनोद करने को उससे कितना ललचाती।
फिर रात काट आँखों में जा दबे पाँव सो जाती॥

—गुरुभक्त सिंह 'भक्त'
(नूरजहाँ[3]—ग्यारहवाँ सर्ग)

तू है महानद **तुल्य** तो मैं एक बूँद **समान** हूँ
तू है मनोहर गीत तो मैं एक उसकी तान हूँ।[4]

—गयाप्रसाद शुक्ल 'स्नेही'

(१३)

मैं **ढूँढ़ता** तुझे था जब कुंज और बन में।
तू **खोजता** मुझे था तब दीन के वतन में॥[5]

—रामनरेश त्रिपाठी

---

१. साकेत, प्रथम संस्करण (१९८८) पृ० ३३।
२. चित्राधार—जयशंकर प्रसाद (पृ० १४७) तृतीय संस्करण
३. नूरजहाँ (पृ० ८१) चतुर्थ आवृति
४. सुकवि सुधा, पृ० १३४
५. सुकवि सुधा, पृ० ११९

(१४)

खींचो रामराज्य लाने को भू मंडल पर त्रेता !
बनने दो **आकाश** छेद कर उसको राष्ट्र विजेता।
कोई **नभ** से आग उगल कर किये शान्ति का दान
कोई भाँज रहा हथकड़ियाँ छेड़ संक्रांति की तान ।।

—माखनलाल चतुर्वेदी

(१५)

चिलचिलाती धूप का यह देश
कल्पने ! **कोमल** तुम्हारा देश
लाल चिनगारी यहाँ की धूल
एक गुच्छा तुम जुही के फूल
दाह में यह ब्याह का संगीत
भूल क्या सकती न पिछली प्रीत
पड़ चुका है आग में संसार
आज तुम असमय पधारी क्या करूँ सत्कार
मेरी बावली मेहमान !
शेष अब भी उसे निज को समर्पित जान
लहू में आशा हरी **सुकुमार**
दाह के आकाश में मन्दाकिनी की धार।

—रामधारी सिंह दिनकर
(रसवन्ती[1]—दाह की कोयल)

(१६)

दारा ने चन्दा दिखलाया नेत्र नीर युत **दमक** उठे।
धुली हुई मुस्कान देखकर सब के चेहरे **चमक** उठे ।[2]

—सुभद्रा कुमारी चौहान

(१७)

आँसू की आँखों से मिल
भर ही आते हैं **लोचन**।[3]

—पन्त

---

१. रसवन्ती पृ० २४ (चतुर्थ संस्करण)
२. सुकवि सुधा पृ० १५२
३. आधुनिक कवि पन्त (तृतीय संस्करण) पृ० ४४९

(१८)

कहीं मानव के अत्याचार
कहीं दीनों की दैन्य पुकार
कहीं दुश्चिन्ताओं के भार
दबा क्रन्दन करता **संसार**
करें आओ मिल हम दो चार
जगत कोलाहल में कल्लोल
दुःखों से पागल होकर आज
रही बुलबुल डालों पर बोल।[1]

—बच्चन
(मधुबाला—बुलबुल)

(१९)

सख्त बात से नहीं **स्नेह** से
काम जरा लेकर देखो।
अपने अन्तर का **नेह** अरे देकर देखो।
कितने भी गहरे रहें गर्त
हर जगह **प्यार** जा सकता है।[2]

—भवानीप्रसाद मिश्र

(२०)

व्योम का ज्यों **अरण्य** हो शान्त
मृगी शावक सा अंचल थाम
तुम्हें मुनिकन्या सा धन क्लान्त
तुम्हारी चम्पक बाहों बीच
लेता आँखें मीच

लहर की स्वर्ण कमल की नाल
समझ कर पकड़ रहे गज बाल
तुम्हारे उत्तरीय के रंग
किरन फैला आती हिम शृंग
हँसी जब इन्द्र दिशा सी देवि

---

१. मधुबाला पृ० ९० आठवाँ संस्करण
२. दूसरा सप्तक (अज्ञेय) पृ० २३

सोम रंजित नयनों की छाँह
मलय के चन्दन कानन में।[१]

—नरेश मेहता

प्राचीन, मध्य तथा आधुनिक काल के विशिष्ट कवियों की पद्य-कृतियों से उद्धृत उक्त पद्य इस तथ्य के प्रदर्शक हैं कि पर्याय हमारे पद्य का अंग रहे हैं और हमारे कवि चमत्कार सूक्ष्मभाव, तुक, लय आदि के विचार से उनका उपयोग करते आए हैं। तुक, लय, छन्द आदि के विचार से यदि पर्यायों का उपयोग आवश्यक समझा जाए तो सूक्ष्म भाव की अभिव्यक्ति के लिए भी उनका उपयोग आवश्यक समझना चाहिए।

गद्य साहित्य में पर्याय

पद्य की भाँति गद्य-साहित्य में भी पर्यायों के प्रति अनुराग हमारे लेखकों का रहा है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी के समय से अर्थात् पद्य साहित्य के जन्मकाल से ही उसमें पर्यायों का प्रयोग होता रहा है। यदि यह कहा जाए कि पद्य में तो तुक, लय, मात्रा, छन्द आदि के कारण ही पर्यायों का प्रयोग होता है तो यह बात ठीक नहीं है क्योंकि गद्य में तो उक्त जैसे बंधन नहीं होते फिर भी पर्यायों का प्रयोग तो होता ही है।

हिन्दी के कुछ प्रमुख पद्य लेखकों के नीचे दिए हुए वाक्य (या अनुच्छेद) देखिए जिनमें पर्याय प्रयुक्त हुए हैं।

यह उद्यान भी कैसा **मनोहर** है इसके सब वृक्ष कैसे फले फूले हैं और यह सरोवर कैसे निर्मल जल से भरा हुआ है मानों सब वृक्षों ने अपने फूलों की शोभा देखने को इस उद्यान के बीच में एक **सुन्दर** आरसी लगा दी है।[२]

—भारतेन्दु

हम स्वीकार करते हैं कि कोई शशिबदनी चाहे कितनी रूपवती हो पर कुछ **आभूषण** पिन्हा देने पर उसकी शोभा बढ़ जाती है। फिर भी कहना ही पड़ता है कि जैसे अंग-प्रत्यंगों को **आभरणों** से आच्छादित कर देने से कुछ ग्रामीणता एवं भद्दापन बोध होने लगता है।

—मिश्र बन्धु

—मिश्रबंधुविनोद[३] (पृ० १०७३)

---

१. दूसरा सप्तक (अज्ञेय) पृ० १२७

२. भारतेन्दु नाटकावली—द्वितीय भाग पृ० ५

३. मिश्रबंधु विनोद, प्रथम संस्करण, पृ० १०७३

देश-भक्तों का कहना है कि स्वराज्य अर्थात् **स्वतन्त्रता** हो तो नरक में भी रहना अच्छा है और पर-राज्य अर्थात् परतन्त्रता हो तो स्वर्ग में भी रहना अच्छा नहीं। मतलब यह कि स्वराज्य के बराबर सुख नहीं और परराज्य में रहने के बराबर दुःख नहीं। इसी से **स्वाधीनता** की इतनी महिमा है।

—महावीरप्रसाद द्विवेदी
(सं० १८९३)
—विचार विमर्श[१] (पृ० ३२७)

संसार सागर की रूप-तरंगों से ही मनुष्य की कल्पना का **निर्माण** और इसी की रूपगति से उसके भीतर विविध भावों या मनोविकारों का **विधान** हुआ है।

—रामचन्द्र शुक्ल
(चिंतामणि)[२]

सोवियत भूमि से उसके उद्योग-धंधों की जो उन्नति हुई है वह संसार के इतिहास में अभूतपूर्व है। **देश** के उद्योगीकरण को एक तरह से उन्होंने खाली हाथ शुरू किया था। **मुल्क** के पहले के स्थापित कारखाने प्रायः बन्द हो चुके थे।

—राहुल सांकृत्यायन
(सोवियत भूमि)[३]

इससे उसकी **शोभा** कुछ अवश्य बढ़ जाएगी। परन्तु इसके विपरीत यदि नीचे से ऊपर तक भारी भरकम गहनों से लाद दिया गया तो उसकी नैसर्गिक **सुंदरता** दब जाएगी।

—किशोरीलाल वाजपेयी
(लेखन-कला)[४]

संघर्ष में जो सबल व्यक्ति अपनी रक्षा कर सकता था वही अब **सुकुमार** संगिनी और **कोमल** शिशु को लेकर दुर्बल हो उठा...।

—महादेवी वर्मा
(शृंखला की कड़ियाँ[५])

धीरे धीरे सब लोग कक्ष से बाहर निकलने लगे और कुछ देर में कक्ष **शून्य** हो

---

१. विचार-विमर्श, प्रथम संस्करण, पृ० ३२७
२. चिंतामणि (संस्करण १९४८), पृ० २४२
३. सोवियत-भूमि, प्रथम संस्करण, पृ० ५३२
४. लेखन-कला, पृ० ३७
५. शृंखला की कड़ियाँ, षष्ठ संस्करण, पृ० ३०

गया। **खाली** मद्यपात्र अस्तव्यस्त उपाधान दलित कुसुम गन्ध और बिखरे हुए पासे यहाँ वहाँ पड़े रह गये थे. . .।

—चतुरसेन शास्त्री
(वैशाली की नगरवधू)[1]

पोथियों के संग्रह और उद्धार का कार्य भी अभी शुरू ही हुआ समझना चाहिए, फिर भी विदेशी तथा देशी विद्वानों ने अनेक **ग्रंथों** का उद्धार किया है. . .।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी
(अशोक के फूल)[2]

अभी **भोजन** समाप्त नहीं हुआ था कि उसके मस्तिष्क में खुमारी चढ़ने लगी। उसे स्मृत नहीं रहा कि उसने कब **खाना** बन्द किया है और कब वह अचेत हो वहीं भूमि पर लेट गया है।

—गुरुदत्त
(बहती रेता)[3]

वन जाने पर भी अगर रोना कल्पना बना रहा तो उससे **लाभ** ही क्या ! कुल बोरनी अगर गंगा नहा भी आये तो उससे **फायदा** क्या।

—रांगेय राघव
(लोई का ताना)[4]

काम के बीच में कभी कभी पण्डुकी उसे गोद में लेकर दूध पिलाती है और एक **कथा** सुनाकर सुला देती है। रानी माँ के मुँह से सुनी रानी माँ की दुःख-दर्द भरी **कहानी** के एकाध टुकड़े चुपचाप सुना देती है।

—फनीश्वरनाथ रेणु
(परती परिकथा)[5]

यह अत्यन्त सुन्दर **पुष्प** और भी विकसित हुआ तब दो जीव जो अलग

---

१. वैशाली की नगरवधू—पूर्वार्द्ध (१९५५ संस्करण), पृ० ६७
२. अशोक के फूल (चतुर्थ संस्करण), पृ० १०८
३. बहती रेता (द्वितीय-संस्करण), पृ० ६५
४. लोई का ताना (दूसरा संस्करण), पृ० ३५
५. परती परिकथा (१९५७) पृ० ३,

अलग थे सदा के लिए एक हो गए। इस फूल को सदा निन्दा और असूया के कीड़ों से बचाया गया, साहस ने इस फल को दिया।

—डा० शिवप्रसाद सिंह
(विद्यापति)

ऐसे सैकड़ों हजारों पर्यायों के प्रयोगों के उदाहरण साहित्य के विविध अंगों में से सहज में ढूंढ़े जा सकते हैं। पर्यायों का प्रयोग वस्तुतः स्वाभाविक तथा सामान्य घटना है। गद्य साहित्य में पर्यायों का प्रयोग शब्दों के पुनरावृत्ति-दोष से रचना को बचाने के लिए तथा अर्थगत सूक्ष्मता के लिए ही किया जाता है। जब कि पद्य साहित्य में उक्त दृष्टियों के अतिरिक्त लय, तुक आदि के कारण भी पर्यायों का प्रयोग करना पड़ता है।

कृतियों में पर्याय

पर्यायों के प्रति चेतना का अधिक उज्ज्वल स्वरूप उस समय दिखाई देता है जब हम किसी कवि की कोई कविता, किसी कथाकार की कोई कहानी, अथवा किसी लेखक की कोई गद्य रचना उठाते हैं। किसी अनुभूति, कल्पना, घटना, तथ्य आदि का विवेचन-निरूपण या वर्णन करते समय रचनाकार पूर्ण स्वतन्त्र होता है और जितना आवश्यक तथा उचित समझता है उतना लिखता है। वह अपने मनचाहे शब्दों का प्रयोग करता है, इस प्रकार पूरी रचना में प्रयुक्त विविध पर्यायों से उसकी पर्यायों के प्रति होनेवाली विचार-दृष्टि अधिक स्पष्ट रूप से सामने आती है।

'घोड़ा'[२] शीर्षक एक पृष्ठ की कविता में जो पर्याय शब्द आये हैं उनका विवरण इस प्रकार है।

घोड़ा, वाजि, हय
अरि, शत्रु
रिपुदल, अरिदल
लहराया, फहराया
पवन, समीरण, मारुत
कहानी, गाथा

आदि आदि

---

१. विद्यापति (१९५७) पृ० १९

२. श्याम नारायण प्रसाद कृत 'झाँसी की रानी' प्रबन्ध काव्य से, पृ० १९

यदि कोई बड़ी कविता ली जाए और उसमें पर्यायों की स्थिति देखी जाए तो कुछ अवस्थाओं में कवि का पर्यायों के प्रति मोह अद्‌भुत दिखाई देता है।

दिनकर की 'नारी'[1] शीर्षक ६ पृष्ठों (१३० पंक्तियों) की कविता में आए हुए पर्यायों का विवरण इस प्रकार है:—

उर, मन, हृदय
मुकुर, दर्पण
आसन्न, निकट
दृग, आँख, लोचन, नयन
लालसा, अभिलाषा
मंद, हल्का
पवन, हवा
बेटा, पुत्र
उद्देश्य, ध्येय
आकुल, विकल, बेचैन
प्रतिमा, मूर्ति
हरिनी, मृगी
प्रकाश, ज्योति
तेज, प्रखर, घोर
नारी, रमणी
मुख, आनन
प्रेम, प्रणय
संघर्ष, संगर
सरल, सहज

आदि आदि

एक छोटी सी पद्यकृति में इतने पर्यायों का होना वस्तुतः उनकी महत्ता का परिचायक है।—हम देखते हैं गद्य कृतियों में भी पर्याय किसी सीमा तक स्वतन्त्रतापूर्वक-विचरण करते हैं, यह तथ्य प्रेमचन्द्र जी की प्रसिद्ध कहानी 'आत्माराम' में आए हुए पर्यायों के नीचे लिखी सूची से जान सकते हैं।

---

१. रसवन्ती (रामधारी सिंह 'दिनकर' कृत) पृ० ४६-५१ (चतुर्थ सं०)

आत्माराम[1] में पर्याय

पृष्ठ संख्या	पर्याय
७८	सुविख्यात
८६	प्रसिद्ध
+ +	+
७८	आदमी
७९	मनुष्य
८१	आदमी (२)
+ +	+
७८	प्रातः
७९	भोर
८४	प्रभात
+ +	+
७८	सन्ध्या
८१	शाम (२)
७९	ध्वनि
७९	आवाज
८१	आवाज
८३	ध्वनि
+ +	+
७९	चीज
८१	वस्तु
+ +	+
७९	शरीर
८१	देह
+ +	+
७९	गगन
८३	आकाश
+ +	+

---

१. यह कहानी "प्रेमचन्द की श्रेष्ठ कहानियाँ" नामक संग्रह में पृ० ७७ से ८६ तक है।

पृष्ठ संख्या		पर्याय
७९		चित्त
७९		कलेजा
८३		अन्तःकरण
८३		हृदय
८४		जी
+	+	+
८१		जीव
८३		प्राणी
+	+	+
८०		इच्छा
८२		अभिलाषा
+	+	+
८०		पेड़ (३)
८१		पेड़
८३		वृक्ष (२)
+	+	+
८१		डाल (२)
८३		शाखा
८३		डाली
+	+	+
७९		पूर्ण
८२		परिपूर्ण
+	+	+
८१		सहसा
८२		अकस्मात्
८२		सहसा
८५		अचानक
+	+	+
८२		हवा
८३		वायु
+	+	+
८२		कृपा
८४		दया

पृष्ठ संख्या	पर्याय
८०	अचम्भा
८४	आश्चर्य
+ +	+
८२	भय
८२	डर
८२	भय
+ +	+
८५	ज्ञात
८६	मालूम

अन्य गद्यकारों की रचनाओं में पर्यायों का उपयोग होता है यह तथ्य महा-देवी वर्म्मा के एक रेखा-चित्र में आए पर्यायों से भी जान सकते हैं।

स्मृति की रेखाएँ[1] में पर्याय

पृष्ठ संख्या	पर्याय
९	अनुरोध
१४	आग्रह
१६	अनुरोध
+ +	+
६	उपयोग
६	प्रयोग
+ +	+
१५	आलोक
१५	रोशनी
+ +	+
१५	व्यवस्था
१५	प्रबन्ध
+ +	+
७	व्यथा
७	दुःख

१. 'स्मृति की रेखाएँ' में का पहला रेखा-चित्र पृ० ५ से १९ तक इसका विस्तार है।

पृष्ठ संख्या	पर्याय
१७	सेवक-स्वामी
१८-१९	नौकर-मालिक
× ×	×
११	कुशल
१४	पटु
× ×	×
८	जगह
१६	स्थान
× ×	×
६	ख्याति
१८	प्रसिद्धि
× ×	×
५	आयु (२)
६	वय
८	अवस्था
× ×	×
९	निमन्त्रण (२)
१५	आमन्त्रण
१९	बुलावा
× ×	×
१७	सम्मान
१८	आदर
× ×	×
१०	खाना
११	भोजन (२)
× ×	×
६	पानी
८	पानी
१०	जल (२)
× ×	×
६,७,८	प्रेम

पृष्ठ संख्या	पर्याय
१७	अनुराग
१७	स्नेह

× × ×

८	प्रयास
१०	यत्न
११	प्रयास (२)

छोटी छोटी गद्य कृतियों में होनेवाले पर्यायों के प्रयोगों के उक्त सरीखे विवरण प्रायः सभी रचनाओं से प्रस्तुत किए जा सकते हैं। ऐसे विवरण इस बात का प्रज्ञापन दृढ़तापूर्वक करने में समर्थ हैं कि पर्याय हिन्दी कवियों तथा लेखकों की लेखन-शैली के अंग हैं।

ललित साहित्य में पर्यायों का निषेध

ललित साहित्य में भी हम कुछ अवस्थाओं में देखते हैं कि पर्यायों का प्रयोग नहीं हो रहा है बल्कि किसी विशिष्ट शब्द की पुनरावृत्ति बार बार हो रही है। ऐसा होने के भी कई कारण हो सकते हैं। पहला कारण यह है कि किसी शब्द के प्रति उसके पर्यायों की अपेक्षा अधिक बढ़ कर होनेवाला मोह है। बच्चन को 'कपोल' से प्रसाद को 'सुन्दर' से महादेवी जी को 'पथ' से इतना मोह है कि इनके पर्यायों की आवृत्तियाँ उक्त शब्दों की अपेक्षा उनके साहित्य में नगण्य हुई हैं। दूसरा कारण यह है कि जब किसी विशेष शब्द पर जोर देना होता है तब उसके पर्यायों को प्रायः कम ही स्थान मिलता है। मीराँ के इस पद में "सूना" पर जोर है:—

होली पिया बिन लागे खारी,
सुनो री सखी मेरी प्यारी॥
सूना गाँव देस सब **सूनो**,
सूनी सेज अटारी॥
सूनी विरहिन पिव बिन डोले,
तज दई पीव पियारा॥

—मीराँ[1]

बच्चन की नीचे लिखी रूबाई में 'सन्देश' शब्द पर जोर है। इसलिए उसकी पुनरावृत्ति होती गई है।

---

१. मीराँ माधुरी, पृ० १४६

यही श्यामल नभ का **सन्देश**
रहा जो तारों के संग झूम
यही उज्ज्वल शशि का **सन्देश**
रहा जो भू के कण कण चूम
यही मलयानिल का **सन्देश**
रही जिससे पल्लव दल डोल
यही कलि कुसमों का **सन्देश**
रहे जो गाँठ सुरभि की खोल

यह लेले उठती **सन्देश**
सलिल की सहज हिलोरें लोल
प्रकृति की प्रतिनिधि बनकर आज
रही बुल बुल डालों पर बोल।[१]

—बच्चन

'झाँसी की रानी' से उद्धृत किए गए निम्न पद में 'शपथ' पर कवि श्याम नारा-ण प्रसाद ने बल दिया है।

शपथ है घर के बन्दनवार
शपथ है पति के अतुलित प्यार
शपथ है पति के गृह के सब हार
करूँगी माता का उद्धार

शपथ है मण्डप के कल गान
शपथ पुरजन के कन्या दान
शपथ जीवन के मधुमय फाग
शपथ माँगों के अरुण विधान

शपथ है तन के नव शृंगार
शपथ मेंहदी के सुन्दर रंग
शपथ तन पर के भूषणभार
शपथ प्रियतम का अब से संग

१. मधुबाला, पाँचवा संस्करण पृ० ६४

शपथ है जीवन में मधुमास
शपथ जीवन में व्यजन बिहार
शपथ वैभव का है उपभोग
करूँगी माता का उद्धार।[१] —श्यामनारायण प्रसाद

'शपथ' का एक पर्याय 'कसम' भी है जो मात्रा बल आदि के विचार से उसके तुल्य है परन्तु फिर भी कवि ने उसका प्रयोग कदाचित् इसी लिए नहीं किया कि कहीं प्रभावोत्पादकता घट न जाए।

तीसरे हम देखते हैं कि तुक आदि के विचार से भी किसी शब्द की पुनरावृत्ति करनी पड़ती है। दिनकर के निम्न पद्य में सखी की आवृत्ति तुक मिलाने के कारण ही हुई है:—

बना रखूँ पुतली दृग की निर्धन का यही दुलार सखी
स्वप्न छोड़ क्या पास तुमारा जिससे करूँ शृंगार सखी
कहाँ रखूँ किस भाँति सोच यह तड़पा करता प्यार सखी
नयन मूँद उर से चिपका लेता आखिर लाचार सखी।[२] —दिनकर

"सखी" के "सहचरी" "सहेली" आदि पर्यायों का उपयोग छंद बन्धन तथा तुक के बाधक होने के कारण ही नहीं हो सका।

परन्तु उक्त चारों उद्धरणों को ध्यानपूर्वक देखने से यह भी ज्ञात होता है कि जिन शब्दों पर जोर देना अभीष्ट नहीं रहा अथवा जहाँ तुक आदि मिलाने का भी प्रश्न नहीं रहा वहाँ पर्यायों का प्रयोग हुआ है। जैसे—

पिया	पिव	मीराँ
घर	गृह	श्यामनारायण प्रसाद
पति	प्रियतम	
दृग	नयन	दिनकर
दुलार	प्यार	
डोलना	झूमना	बच्चन

पद्य की भाँति गद्य में भी कुछ अवसरों पर पर्यायों का प्रयोग नहीं होता। गद्य रचना जब बोल-चाल की भाषा के निकट होती है जैसी कि दैनिक समाचार

१. झाँसी की रानी, पृ० ९७
२. रसवंती (चतुर्थ संस्करण) पृ० ४४

पत्रों में देखते हैं तो वहाँ पर्यायों का प्रयोग नहीं बल्कि शब्दों की पुनरावृत्ति होती है। तथ्य प्रधान साहित्य में जैसा कि हम पहले भी कह चुके हैं कि पर्यायों का निषेध होता है। गद्य साहित्य में विशेषतः भाव-प्रवण साहित्य में ही विशेष रूप से पर्यायों को स्थान मिलता है। गद्य क्षेत्र में भी जब किसी शब्द पर जोर देना अभीष्ट होता है तो वहाँ भी पर्यायों का निषेध होता है।

(ख) गतिविधि

कालमान के विचार से पर्यायों का सर्वेक्षण

हिन्दी गद्य साहित्य का निर्माण तो आधुनिक काल तक सीमित है, किन्तु हमारे पद्य साहित्य की रचना तो वीरगाथा, भक्ति, रीति और आधुनिक कालों में निरन्तर होती रही है। यदि हम वीरगाथा साहित्य के सम्बन्ध में यह आपत्ति मान लें कि इसमें क्षेपकों की भरमार है तो भी भक्ति, रीति और आधुनिक कालों के साहित्य को आधार बना कर पर्यायों के सम्बन्ध में कुछ ज्ञातव्य तथ्यों का अनुसन्धान कर सकते हैं।

पर्यायों के सर्वेक्षण के लिए हम तीनों कालों की एक-एक श्रेष्ठ कृति लेते हैं। भक्तिकाल से 'राम चरित मानस', रीति काल से 'बिहारी सतसई' और आधुनिक काल से 'कामायनी' को लिया जा सकता है। ये तीनों ग्रन्थ अपने-अपने युगों के प्रतिनिधि काव्य माने जाते हैं।

सामान्य निष्कर्ष

१. भक्तिकाल में अन्य दो कालों की अपेक्षा पर्यायवाची शब्दों का उपयोग अधिक किया गया है।

रामचरित मानस में सिन्धु, सुन्दर तथा जल के नीचे लिखे पर्याय प्रयुक्त हुए हैं।

(क) सिन्धु, सागर, वारिधि, जलधि, उदधि, जलनिधि, समुद्र, वारीश, अम्बुधि, वारिनिधि, पायोधि, जलराशि, जलनाथ, तोयनिधि, रत्नाकर। (१५ पर्याय)

(ख) सुन्दर, मनोहर, चारु, मंजु, मंजुल, ललित, अभिराम, कमनीय, ललाम, मनोरम, सुठि। (११ पर्याय)

(ग) जल, वारि, नीर, पानी, सलिल, अम्बु, पाथ, तोय। (८ पर्याय)

परन्तु बिहारी सतसई ने सिन्धु के तीन (सिन्धु, सागर, जलधि), सुन्दर के

तीन (सुन्दर, चारु और ललित) और जल के चार पर्याय (जल, नीर, पानी और सलिल) आए हैं।

इसी प्रकार कामायनी में सिन्धु के छः (सिन्धु, सागर, जलधि, उदधि, जलनिधि, समुद्र), सुन्दर के आठ (सुन्दर, मनोहर, मंजु, मंजुल, ललित, अभिराम, कमनीय, ललाम), जल के चार (जल, नीर, पानी और सलिल) आए हैं।

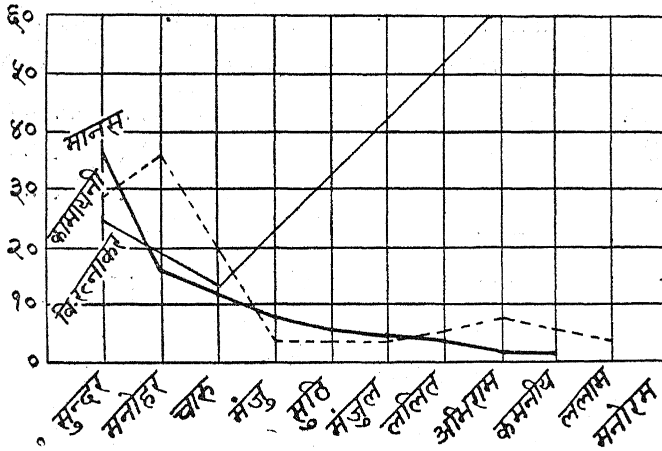
२. तीनों कालों में हम देखते हैं कि पर्याय-वर्ग में से एक, दो पर्याय किसी कवि को अधिक प्रिय लगते हैं और इसलिए उनका प्रयोग अन्य पर्यायों की अपेक्षा अधिक हुआ है। ऐसे पर्यायों का चुनाव कवि की रुचि पर निर्भर होता है।

'सुन्दर' और उसके सब पर्यायों की मानस में ३६७ आवृत्तियाँ हुई हैं जब कि केवल सुन्दर की इनमें १४१ आवृत्तियाँ हुई हैं। इस प्रकार मानस में 'सुन्दर' को वरीयता मिली है।

'बिहारी रत्नाकर' में उक्त वर्ग में 'ललित' को और कामायनी में 'मनोहर' को वरीयता मिली है।

यहाँ 'सुन्दर' के पर्यायों की तालिका दी जाती है। तीन ग्रन्थों में जितनी बार उनकी आवृत्तियाँ हुई हैं उनका निर्देश उनके आगे किया है। तीन ग्रन्थ अपेक्षाकृत बड़े-छोटे हैं और प्रसंग भी भिन्न हैं इसलिए सुविधा के लिए उनके साथ उनका प्रतिशत मान भी दे दिया गया है।

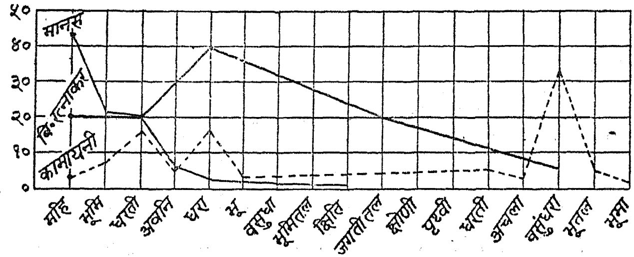
पर्याय	रामचरितमानस में आवृत्तियाँ		बिहारी रत्नाकर में आवृत्तियाँ		कामायनी में आवृत्तियाँ	
सुन्दर	१४१	३८ प्रतिशत	२	२५ प्रतिशत	९	२९ प्रतिशत
मनोहर	६५	१७ प्रतिशत	—		—	—
चारु	४९	१२ प्रतिशत	१	१३ प्रतिशत	१२	३६ प्रतिशत
मंजु	२७	७ प्रतिशत	—		१	३ प्रतिशत
सुठि	२२	५ प्रतिशत	—		—	
मंजुल	१८	४ प्रतिशत	—		१	३ प्रतिशत
ललित	१३	३ प्रतिशत	५	६२ प्रतिशत	२	६ प्रतिशत
अभिराम	५	१ प्रतिशत	—		३	९ प्रतिशत
कमनीय	४	१ प्रतिशत	—		२	६ प्रतिशत
ललाम	२				१	३ प्रतिशत
मनोरम	१					
योग	३६७		८		३१	



एक उदाहरण भूमि तथा उसके पर्यायों का और लीजिए। मानस में 'महि' को बिहारी रत्नाकर में 'धरा' को और कामायनी में 'वसुन्धरा' को वरीयता मिली है।

	मानस में आवृत्तियाँ		बिहारी रत्नाकर में आवृत्तियाँ		कामायनी में आवृत्तियाँ	
महि	११५	४४ प्रतिशत	१	२० प्रतिशत	१	२ प्रतिशत
भूमि	५५	२१ प्रतिशत			३	७ प्रतिशत
धरणी	५४	२० प्रतिशत	१	२० प्रतिशत	७	१७ प्रतिशत
अवनि	१४	५ प्रतिशत			१	२ प्रतिशत
धरा	७	२ प्रतिशत	२	४० प्रतिशत	७	१७ प्रतिशत
भू	३	१ प्रतिशत			१	२ प्रतिशत
वसुधा	३	१ प्रतिशत				
भूमितल	३	१ प्रतिशत				
क्षिति	३	१ प्रतिशत				
जगतीतल	१		१	२० प्रतिशत		
क्षोणी	१					
पृथ्वी						
धरती					२	५ प्रतिशत
अचला					१	२ प्रतिशत

	मानस में आवृत्तियाँ	बिहारी रत्नाकर में आवृत्तियाँ	कामायनी में आवृत्तियाँ	
वसुन्धरा			१३	३३ प्रतिशत
भूतल			२	५ प्रतिशत
भूमा			१	२ प्रतिशत
योग	२५९	५	३९	



३. एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि विभिन्न पर्याय वर्गों में से किसी एक शब्द की लोकप्रियता विभिन्न कालों में प्रतिशत के विचार से (क) क्रमशः बढ़ती गयी और (ख) क्रमशः घटती गयी हो। कुछ उदाहरण लीजिए :–

(क) लोकप्रियता घटती गयी

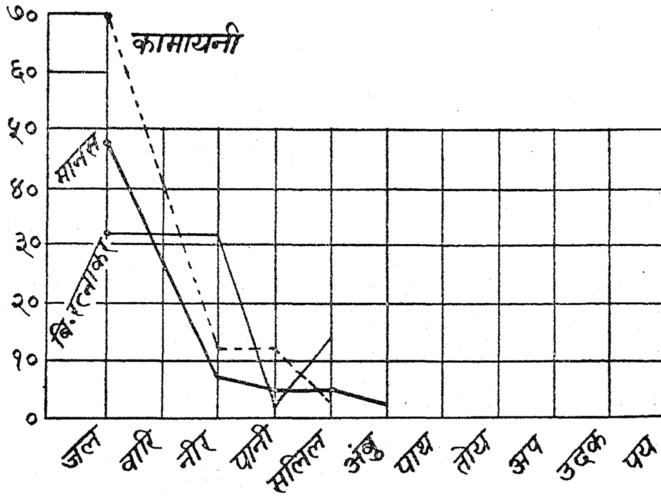
शब्द	रामचरित मानस	बिहारी रत्नाकर	कामायनी
प्रीति	४५ प्रतिशत	७ प्रतिशत	० प्रतिशत
भव	१८ प्रतिशत	३ प्रतिशत	० प्रतिशत
महि	४ प्रतिशत	२ प्रतिशत	० प्रतिशत
वारि	२६ प्रतिशत	० प्रतिशत	० प्रतिशत

(ख) लोकप्रियता बढ़ती गयी

विश्व	६ प्रतिशत	२५ प्रतिशत	४२ प्रतिशत
धरणी	१८ प्रतिशत	२५ प्रतिशत	३० प्रतिशत
प्यार	० प्रतिशत	२ प्रतिशत	८ प्रतिशत

जल, सिन्धु, जग और प्रीति की सारणियाँ देखें :–

पर्याय	रामचरितमानस		बिहारी रत्नाकर		कामायनी	
जल	१२७	४१ प्रतिशत	१२	४१ प्रतिशत	१७	७१ प्रतिशत
वारि	७३	२८ प्रतिशत				
नीर	२०	७ प्रतिशत	१२	४१ प्रतिशत	३	१२ प्रतिशत
पानी	१५	५ प्रतिशत	१	३ प्रतिशत	३	१२ प्रतिशत
सलिल	१५	५ प्रतिशत	४	१४ प्रतिशत	१	४ प्रतिशत
अम्बु	३	१ प्रतिशत				
पाथ	३					
तोय	१					
अप	—					
उदक	—					
पय	—					
योग	२५७		२९		२४	

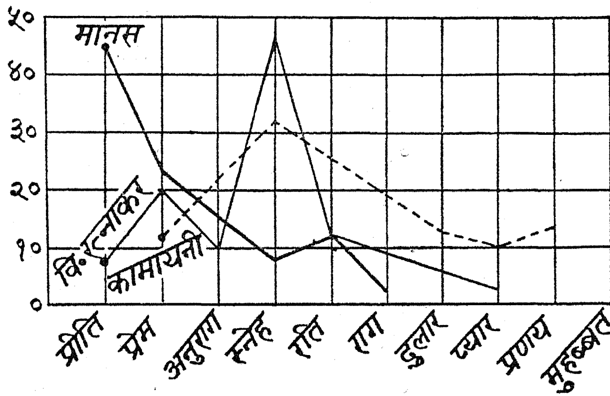


पर्याय	रा० मानस		बि० रत्नाकर		कामायनी	
सिन्धु	६७	३५ प्रतिशत	२	५० प्रतिशत	८	२० प्रतिशत
सागर	५५	२९ प्रतिशत	१	२५ प्रतिशत	१०	२५ प्रतिशत
वारिधि	१४	प्रतिशत				

जलधि	१	६ प्रतिशत	१	२५ प्रतिशत	७	१८ प्रतिशत
उदधि	११	६ प्रतिशत			२	५ प्रतिशत
जलनिधि	८	४ प्रतिशत			११	२७ प्रतिशत
समुद्र	६	३ प्रतिशत			२	५ प्रतिशत
बारीश	४	२ प्रतिशत				
अम्बुधि	४	२ प्रतिशत				
बारिनिधि	२	१ प्रतिशत				
पायोधि	२	१ प्रतिशत				
अम्बुधिप	२	१ प्रतिशत				
जलराशि	१					
जलनाथ	१					
तोयनिधि	१					
रत्नाकर	१					
योग	१९०		४		४०	

पर्याय	रामचरित मानस,		बिहारी रत्नाकर		कामायनी	
जग	२७०	४७ प्रतिशत	१७	५४ प्रतिशत	५	४ प्रतिशत
भव	१०७	१८ प्रतिशत	१	३ प्रतिशत	१	
लोक	७८	१३ प्रतिशत	२	६ प्रतिशत	१४	१३ प्रतिशत
विश्व	४०	६ प्रतिशत	८	२५ प्रतिशत	४३	४२ प्रतिशत
जगत	२९	५ प्रतिशत			१३	१२ प्रतिशत
भुवन	२७	४ प्रतिशत			१	
चराचर	२१	३ प्रतिशत			५	४ प्रतिशत
दुनी	१					
संसार			३	९ प्रतिशत		
संसृति					२०	१९ प्रतिशत
जहान						
आलय						
खलक						
योग	५७३		३१		१०२	

पर्याय	रामचरित मानस,		बिहारी रत्नाकर		कामायनी	
प्रीति	१८६	४५ प्रतिशत	३	८ प्रतिशत	०	
प्रेम	९६	२३ प्रतिशत	९	२३ प्रतिशत	५	१३ प्रतिशत
अनुराग	६७	१६ प्रतिशत	४	१० प्रतिशत	९	२३ प्रतिशत
स्नेह	३६	९ प्रतिशत	२०	४८ प्रतिशत	१३	३३ प्रतिशत
रति	४१	१२ प्रतिशत	५	१२ प्रतिशत		
राग	९	२ प्रतिशत			७	१८ प्रतिशत
दुलार	२				५	१३ प्रतिशत
प्यार			१	२ प्रतिशत	४	१० प्रतिशत
प्रणय					६	१६ प्रतिशत
मुहब्बत						
योग	४७०		४२		३९	



४. पिछले पृष्ठों में दी गई सारणियों में जिन पर्याय वर्गों का उल्लेख हुआ है उनका अध्ययन करने पर यह भी पता चलता है कि हर पर्याय वर्ग में सामान्यतः तीन चार ऐसे शब्द होते हैं जिन में से एक दूसरे को विभिन्न कवियों ने अपनी अपनी रुचि के अनुसार अन्य पर्यायों की अपेक्षा वरीयता दी होती है। कुछ विभिन्न पर्याय-वर्गों के प्रथम चमर पर्यायों का वरीयता-क्रम मानस, बिहारी रत्नाकर और कामायनी में इस प्रकार है।

मानस	वि० रत्नाकर	कामायनी
जल	जल	जल
वारि	नीर	नीर
नीर	सलिल	पानी
पानी	पानी	सलिल
०	०	०
सिन्धु	सिन्धु	जलनिधि
सागर	सागर	सागर
वारिधि	जलधि	सिन्धु
जलधि	—	जलधि
०	०	०
जग	जग	विश्व
भव	विश्व	संसार
लोक	संसार	लोक
विश्व	लोक	जगत
०	०	०
तन	तन	शरीर
शरीर	गात	काया
गात	देह	देह
देह	शरीर	गात
०	०	०
प्रीति	स्नेह	स्नेह
प्रेम	प्रेम	अनुराग
अनुराग	रति	राग
स्नेह	अनुराग	प्रेम
०	०	०
महि	धरा	वसुन्धरा

भूमि	महि	धरनी
धरनी	धरनी	भूधरा
अवनि	—	भूमि
०	०	०
सुन्दर	ललित	मनोहर
मनोहर	सुन्दर	सुन्दर
चारु	चारु	ललित
मंजु	चारु	मंजु
०	०	०

५. कुछ ऐसे भी पर्याय हैं जो गुण और सौन्दर्य की दृष्टि से श्रेष्ठ होने पर भी उक्त तीनों प्रमुख कवियों के द्वारा गृहीत नहीं हुए हैं। उदाहरण के लिए 'रत्नाकर' शब्द लिया जा सकता है। समुद्र के पर्यायों की आवृत्ति मानस, बि० रत्नाकर और कामायनी में कुल मिलाकर २२२ बार हुई है जब कि 'रत्नाकर' का प्रयोग एक बार से अधिक नहीं हुआ है। 'प्रीति' और उसके पर्यायों की ५८१ बार आवृत्तियाँ उक्त तीनों ग्रंथों में सब मिलाकर हुई हैं जब कि 'प्यार' जैसे प्रिय और हल्के शब्द की आवृत्ति केवल पाँच बार ही हुई है। जग के पर्यायों की आवृत्तियाँ मानस, बिहारी, रत्नाकर और कामायनी में ७०६ बार हुई हैं परन्तु 'संसार' की कुल तीन ही आवृत्तियाँ हुई हैं। मनोरम ललाम, समुद्र आदि की आवृत्तियाँ भी अपने पर्यायों की आवृत्तियों की अपेक्षा नगण्य हुई हैं।

६. स्मरण रखने योग्य एक तथ्य यह भी है कि कुछ ऐसे अवसर हैं जहाँ कवि ने किसी एक शब्द का एक साथ दो तीन चार या अधिक बार आवृत्तियाँ की हों उसके अन्य पर्यायों को कुछ समय के लिए छोड़ दिया हो। परन्तु साधारणतया हम यही देखते हैं कि वह किसी शब्द की आवृत्ति तभी करता है जब वह उसके पर्याय वर्ग में से किसी अन्य शब्द का प्रयोग कर चुका होता है।

जिस क्रम से मानस, विहारी, रत्नाकर और कामायनी में सिंधु पर्याय वर्ग तथा प्रीति वर्ग के मुख्य मुख्य पर्याय शब्द प्रयुक्त हुए हैं उन्हें रेखा-चित्रों द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है—

'सिन्धु' पर्याय-माला का आवृत्तिफलक

(रामचरित मानस)

सा० १

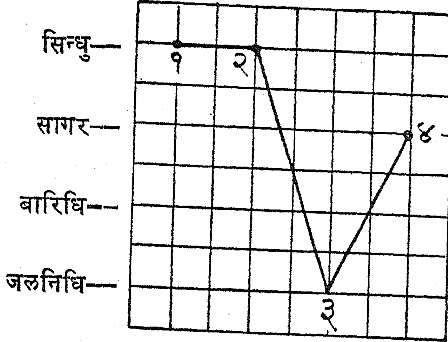
सिंधु
सागर
वारिधि
जलधि
उदधि
जलनिधि
समुद्र

(इसी प्रकार आगे भी)

'सिन्धु' पर्याय-माला का आवृत्तिफलक

(बिहारी सतसई)

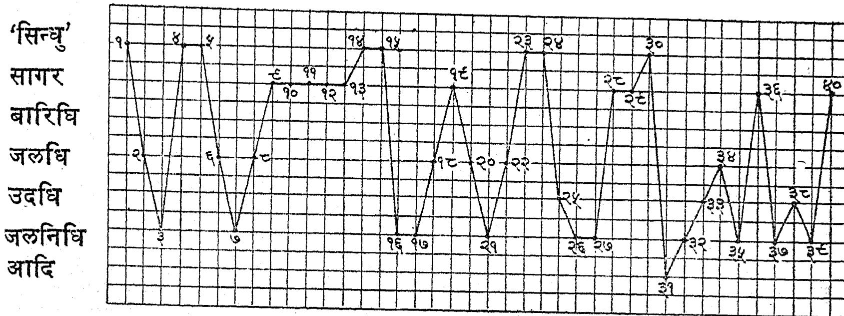
सा० २



'सिन्धु' पर्याय-माला का आवृत्तिफलक

(कामायणी)

सा० ३

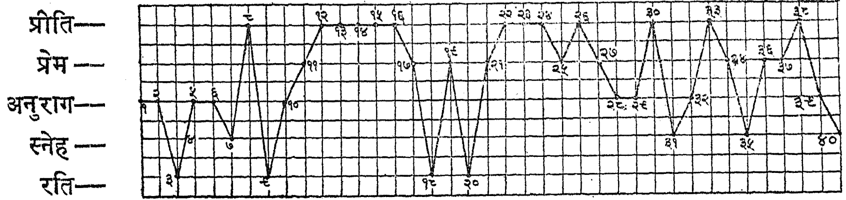


(इसी प्रकार आगे भी)

'प्रीति' पर्याय-माला का आवृत्ति-फलक

(रामचरित मानस)

सा० ४

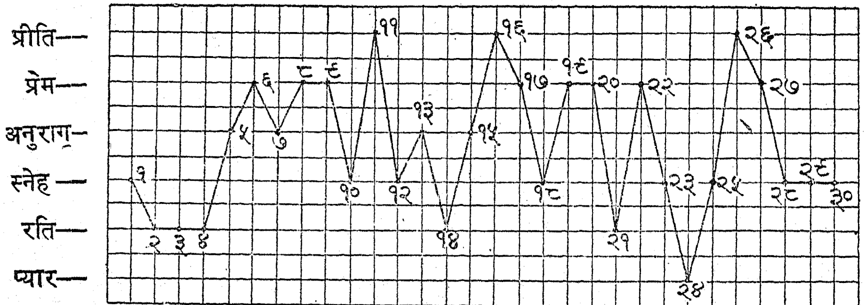


(इसी प्रकार आगे भी)

'प्रीति' पर्याय-माला का आवृत्तिफलक

(विहारी सतसई)

सा० ५

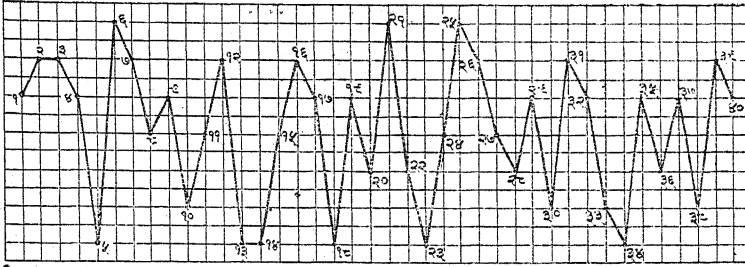


(इसी प्रकार आगे भी)

'प्रीति' पर्याय-माला का आवृति फलक

(कामायनी में)

सा० ६



इन ६ सारणियों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि किसी शब्द विशेष का प्रयोग करने के बाद उसका प्रयोग तभी किया जाता है जबकि एक, दो या अधिक उसके पर्याय प्रयुक्त कर लिए जाते हैं। और जहाँ-जहाँ हम देखते हैं कि लगातार कोई शब्द प्रयुक्त होता चल रहा है वहाँ उसकी आवृत्तियों के बाद में हम यथेष्ट अवकाश पाते हैं। यह अवकाश उनका उक्त दोष वस्तुतः कम कर देता है। कारण स्पष्ट है कि लिखते समय पन्ने दो पन्ने तक ही पहले प्रयुक्त किए हुए शब्दों की स्मृति रहती है। हर शब्द के सम्बन्ध में यह स्मरण रखना कि वह कब और कहाँ आया है बहुत ही कठिन काम है। अच्छे लेखक इस बात का अवश्य प्रयत्न करते हैं कि जिस शब्द को किसी एक पन्ने पर प्रयुक्त किया हो उस पन्ने पर पुनः उसका प्रयोग न किया जाय। 'मानस' में 'सिन्धु' की आवृत्ति ३८, ३९ और ४० विन्दुओं पर (देखें सारणी १) तीन बार निरन्तर हुई है जबकि पहली बार वह प्रथम काण्ड के २५८ दोहे के अन्तर्गत दूसरी बार ३१० दोहे के अन्तर्गत और तीसरी बार ३२५वें दोहे के अन्तर्गत आया है। 'कामायनी' में ९, १०, ११, १२ और १३ विंदुओं पर (देखें सारणी ३) पाँच बार निरन्तर 'सागर' की आवृत्तियाँ हुई हैं। पहली बार वह २६ वें पृष्ठ पर, दूसरी बार ३१ वें पृष्ठ पर, तीसरी बार ३४वें पृष्ठ पर और ५वीं तथा ६वीं बार क्रमात् ३५वें तथा ३६वें पृष्ठों पर आया है।

छठा अध्याय

परिणति

जीवित प्राणियों के सम्बन्ध में निर्विवाद रूप से कहा जाता है कि वे अपनी समर्थता, प्रवृत्ति आदि के द्वारा अपना पथ निर्धारित करते हैं। अशक्तों को काल जल्दी खा जाता है और बलवानों के लिए काल के थपेड़े सहना साधारण सी बात है। शब्दों के सम्बन्ध में भी यही सिद्धान्त लागू होता है। वे भी जीवित प्राणियों के सदृश हैं। उन्हें भी अपनी समर्थता के बल पर जीना पड़ता है और अपनी दुर्बलता के कारण लुप्त हो जाना पड़ता है। विद्वान् बतलाते हैं कि शब्द का दीर्घ काल तक जीवित रहना उनके सुविधाजनक उच्चारण, उपयोगिता तथा आन्तरिक गुण पर निर्भर करता है।

अपनी पर्याय सम्पदा विशेषतः नाम-मालाओं और पर्यायवाची कोशों में दी हुई पर्याय शब्द सूचियों का अवलोकन करने पर हम देखते हैं कि बहुत से पर्याय शब्द काल-कवलित हो गए हैं, बहुत से नए आ गए हैं। ऐसा भी हुआ है कि जो शब्द पहले पर्याय थे वे अब पर्याय नहीं रह गए हैं या जो शब्द पहले पर्याय नहीं थे अब वे पर्याय बन गए हैं। उक्त तथा ऐसी अन्य परिणतियाँ पर्यायों की जो द्रष्टव्य हैं, वे हैं—

१. पर्यायों का तिरोभाव होता है

जन्म लेने वाली वस्तु एक दिन तिरोभूत भी होगी यह वैश्व सत्य है। यह सत्य पर्यायों पर भी लागू होता है। यदि हम नाम-मालाओं और पर्यायवाची कोशों में दी हुई पर्याय शब्द सूचियों पर दृष्टिपात करें तो हम सरलता से जान सकते हैं कि हमारी बहुत सी पर्याय शब्द-संपदा काल के गर्भ में जा चुकी है। लुप्त होनेवाले ऐसे पर्याय शब्दों में (क) संस्कृत के शब्द हैं और (ख) बोलियों के शब्द हैं जो भक्तिकाल और रीतिकाल में चलते रहे हैं।

मध्य युग में पर्यायों की सूचियाँ पद्य में प्रस्तुत की जाती थीं। इनमें अधिकतर संस्कृत शब्द ही होते थे। यह आवश्यक नहीं है कि ऐसे पद्यों में आए हुए सभी पर्यायवाची संस्कृत शब्द उस युग विशेष में प्रचलित रहे हों। कारण यह कि ऐसी

सूचियाँ साहित्य को आधार बना कर नहीं बल्कि कोशों को आधार बनाकर 'अमरकोश' की परम्परा का निर्वाह करने के लिए बनाई गईं। इस प्रकार यह सम्भव है कि सूचियों में दिए हुए अनेक पर्याय शब्द उस युग में भी प्रचलित न रहे हों। दूसरे यह भी सम्भव है कि कुछ पर्याय छूट भी गए हों। कारण स्पष्ट भी है क्योंकि तुक, लय, मात्रा आदि के विचार से जो पर्याय शब्द पद्य में उपयुक्त न बैठे हों उनका बहिष्कार हुआ हो।

उक्त दोनों सम्भावनाओं को ध्यान में रखते हुए भी हमें इतना अवश्य स्वीकार करना होगा कि ऐसी सूचियों में आए हुए अधिकतर पर्याय शब्द अवश्य प्रचलन में रहे होंगे।

उदाहरण के लिए रक्त शब्द के पर्याय लीजिए:—

शोणित, रक्त, ककोणि, पुनि, रुधिर, असृक, क्षतजात।
लोहू पीयत पूतना पूत भई छैव जात।।[१]—नन्ददास

लोहू (लहू) के यहाँ शोणित, रक्त, ककोणि, रुधिर, असृक और क्षतजात ये छ पर्याय हैं जो मूलतः सभी संस्कृत हैं। **ककोणि** और **क्षतजात** को छोड़कर शेष चारों का तुलसी साहित्य में प्रयोग हुआ है।[२] संभव है **ककोणि** और **क्षतजात** के प्रयोग अन्य मध्ययुग के कवियों की रचनाओं में प्राप्त हों। परन्तु इस समय स्थिति यह है कि **ककोणि, असृक** और **क्षतजात** बिलकुल नहीं चलते। **रुधिर** और **शोणित** का प्रयोग भी कम ही देखने में आ रहा है। इस प्रकार ये पर्याय शब्द लुप्त हो गए हैं या होते जा रहे हैं। "मुख" का एक पर्याय **बदन** था जिसका तुलसी साहित्य में सैकड़ों बार प्रयोग हुआ है। परन्तु अब यह अस्तित्व में नहीं रहा है। **मुख** के कुछ अन्य पर्याय **आस्य** और **वक्त्र** भी लुप्त हो गए हैं और **तुण्ड** भी लुप्त-प्राय ही है। नन्ददास ग्रन्थावली में "मुख" के पर्यायों की नाम-माला इस प्रकार है।

आनन आस्य जु पुनि वदन, वक्त्र तुण्ड छवि भौन।
मुख रूखो जात इमि जिमि दरपन मुख पौन।।

—नन्ददास

आनन का प्रयोग भी पद्य साहित्य तक सीमित ही है।

"लता" के छ पर्याय नाम-माला में हैं:—

---

१. नन्ददास ग्रन्थावली (नागरी प्रचारिणी सभा)—नाममाला १३२

२. तुलसी शब्द सागर (हिन्दोस्तानी एकेडेमी) प्रथम संस्करण

३. नन्ददास ग्रन्थावली—नाममाला ५९

व्रतती, विशती, वल्लरी, विशनी, लता, अतान।
अमर बेलि जिमि मल बिन इमि देखत तुम मान।[1]

—नन्ददास

अब लता के वल्लरी और बेल (बेलि) पर्याय ही रह गए हैं शेष अपना अस्तित्व गँवा चुके हैं।

व्यक्तिवाचक संज्ञक संस्कृत पर्याय शब्द जिनका व्यवहार मध्य युग में विशेष रूप से होता था उनमें से अधिकतर अब व्यवहार में नहीं रह गए हैं। कदाचित् इसी क्षेत्र से सम्बन्धित हमारी पर्याय-सम्पत्ति अधिक लुप्त हुई है। बृहत् पर्याय कोश में महादेव और विष्णु के सात-सात, आठ-आठ सौ पर्याय दिए गए हैं परन्तु उनके जो पर्याय इस समय प्रचलन में हैं उनकी संख्या सात-सात या आठ-आठ के लगभग ही रह गई है। इसी प्रकार ब्रह्मा के १७२, लक्ष्मी के ६९, सरस्वती के ६८ पर्याय बृहत् पर्यायवाची कोश में दिए गए हैं परन्तु इनके अब चार-चार या पाँच-पाँच पर्याय ही प्रचलन में रह गए हैं।

बोलियों से अपनाए हुए तद्भव, देशज पर्याय शब्दों का भी कुछ अंशों में लोप हो रहा है। विलम्ब के अनगवन, अबेर, गहर और बेर तद्भव (या देशज) पर्याय बृहत् पर्यायवाची कोश में दिए गए हैं उनका प्रयोग स्थानीय रूप से कुछ स्थानों पर भले ही होता हो परन्तु हिन्दी क्षेत्र में व्यापक रूप से नहीं होता। हिन्दी में 'विलम्ब' या उसका फारसी पर्याय "देर" ही व्यवहृत होता है। **सुस्ती** के बृहत् पर्यायवाची कोश में अकारस, आरस, आलकस और ओत चार तद्भव (या देशज) पर्याय शब्दों में से एक भी सामान्य हिन्दी में स्थान नहीं बना सका। सामान्य हिन्दी में सुस्ती या उसका संस्कृत पर्याय **आलस्य** ही चलता है।

तद्भव देशज पर्यायों का विशेष रूप से ह्रास क्रियाओं में देखने में आता है। मध्य युग में **'देखना'** के पर्याय अवलोकना, निरखना; **बनाना** के पर्याय निर्माणा

---

१. वही ,, ११०
२. बृहत् पर्यायवाची कोश क—१६५
३. ,, ,, ,, क—१३४
४. ,, ,, ,, क—१२३
५. ,, ,, ,, क—१६३
६. ,, ,, ,, क—१३०
७. ,, ,, ,, ज—४५१
८. ,, ,, ,, ज—४४६

सूजना; **कूतना** का पर्याय अटकलना; **शुरू करना** का पर्याय आरम्भना चलते थे परन्तु अब उन का प्रयोग उठ गया है। "पता लगाना" का पर्याय थाहना (उदा०—जिहिं बलसीन-रूप जल थाहयों..। सूरसागर-१०-१२७। "चमकना" का पर्याय दमकना (उदा०—दामिनि की दमकनि बूँदनि की झमकनि.....।-सूरसागर-१०-१३७) "फटना" का पर्याय "दरकना" (उदा० उमँगि अंग अँगिया उर दरकी..। सूरसागर-१०-३०१) "देखना" का पर्याय पेखना (उदा०—मोर मोर करि अधिक लाडु धरि पेखत ही जमराउ हसे।—सन्तकबीर, सिरी रागु १); "उबारना" का पर्याय 'उद्धारना' (उदा०—राम उदकि जन जहद उबारे।-सन्तकबीर, रागु गउड़ी१) आदि अनेक ऐसे क्रिया पर्याय लुप्त हो गए हैं।

पर्यायवाची शब्दों के तिरोभाव के कुछ कारण भी हैं। संस्कृत शब्द तो वैसे ही बोल-चाल में प्रयुक्त कम होते हैं। वे विशेषतः साहित्य के क्षेत्र में ही प्रयुक्त होते हैं। जैसें जैसे सामान्य भाषा जन भाषा के निकट आती है वह जन भाषा के शब्द ग्रहण करती है। जन भाषा के सरल शब्दों के ग्रहण के परिणामस्वरूप संस्कृत के पर्याय शब्द छूटते जाते हैं। तद्भव तथा देशज पर्याय शब्दों के लोप के दो कारण हैं। एक तो यह कि उनके प्रयोक्ताओं को गँवारू समझा जाता है और दूसरे नफास्त के विचार से उनका उपयोग नहीं किया जाता है। हिन्दी क्रिया पर्यायों का लोप तो उर्दूवालों की नफास्तपसन्दी के कारण ही हुआ है।

पिछले काँटें हिन्दी लेखक फारसी-अरबी के पर्यायों का बहिष्कार सा करने लगे थे परन्तु अब अनेक उर्दू के लेखकों के हिन्दी में उतरने से ऐसा प्रतीत होने लगा है कि फारसी अरबी के जो पर्याय शब्द हिन्दी ने अपना लिए हैं वे अपना स्थान बनाए रखेंगे। संस्कृत पर्यायों के लोप की भी साहित्यिक भाषा में सम्भावना कम है क्योंकि संस्कृत-निष्ठ भाषा लिखनेवाले भी लोग हैं तथा उनका ऐसा विश्वास है कि संस्कृत-निष्ठ भाषा के माध्यम से भारतीय एकता स्थापित की जा सकती है। हाँ अँगरेजी पर्यायवाची शब्दों का लोप धीरे धीरे उन्हें परकीय समझने की भावना के फलस्वरूप अवश्यम्भावी है।

पर्यायों में भी मनुष्यों की भाँति अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए होड़ होती है। जो बलवान् होता है वह निर्बल को खा जाता है। "पाठशाला" को एक दिन उसके पर्याय "मकतब" ने धर दबाया था फिर "मकतब" को "स्कूल" ने धर दबाया और अब हम देखते हैं कि 'विद्यालय' स्कूल पर हावी हो रहा है। संस्कृत "कर्तरी" तथा प्राकृत "कत्तरी" को इनके पर्याय "कैंची" (तुर्की) ने खा डाला। "कमर" और "कमरे" ने तो "कटि" और "कक्ष" की दशा भी शोचनीय कर दी है।

ऐसे पर्याय जिनके अर्थों में विवक्षागत अन्तर नहीं हैं उनमें से कोई एक ही बना रहेगा शेष लुप्त हो जाएँगे। इसका मुख्य कारण यह है कि कोई भी चीज व्यर्थ का बोझ अपने ऊपर लादना पसन्द नहीं करती।

बोल चाल में हम लोग देख चुके हैं कि पर्यायों को कम स्थान मिलता है। बोल-चाल में हम लोग "आँख" का प्रयोग करते हैं नेत्र, नयन, चक्षु आदि का प्रयोग नहीं करते। परन्तु आकाश, आसमान; फुरसत, छुट्टी; तारीफ, प्रशंसा; यश, कीर्ति; साहस, हिम्मत; धुन, लगन; रोग, बिमारी; लुकना, छिपना; लुच्चा, बदमाश; प्रकाश, रोशनी; समय, वक्त; शूर, बहादुर आदि पर्यायों का प्रयोग बोल-चाल में भी होता है।

ऐसे पर्यायों में यदि विवक्षागत अन्तर नहीं है तो उनमें से किसी एक को ही समय जीने देगा और अगर ऐसे पर्याय जीते रहते हैं तो इनमें या तो विवक्षागत अन्तर अवश्य उत्पन्न होगा अथवा कुछ न कुछ प्रायोगिक विशेषता आ जाएगी।

साहित्य में आज यह प्रवृत्ति है कि वह चमत्कार तथा रस प्रधान नहीं रह चला है। वह चमत्कारहीन, शुष्क तथा एक-रस होता जा रहा है। ऐसी अवस्था में ऐसे पर्याय वर्गों के कुछ शब्द अवश्य लुप्त होंगे ही।

(२) पर्यायों का पर्यायवाची न रह जाना

यह तथ्य भी विश्वक सा है कि शब्द के अर्थ समय के प्रवाह में छूटते तथा बदलते रहते हैं। ऐसा होता है कि कल जो शब्द पर्याय कहे जाते थे, उनमें से एक का अर्थ बदलने के कारण अथवा अर्थ छूट जाने के कारण अब वे पर्याय न रह गए हों। कुछ उदाहरण लीजिए—

१. मन्दिर[१] अब "महल" का पर्याय नहीं रह गया।
२. मृग[२] अब "पशु" का पर्याय नहीं रह गया।
३. व्रत[३] अब "संकल्प" का पर्याय नहीं रह गया।
४. हरिजन[४] अब 'ईश्वर-भक्त' का पर्याय नहीं रह गया।

---

१. मन्दिर मँह राजहिं रानी। —तुलसी (रा० च० मा० १-१८९-७)

२. रघुपति चरन उपासक जेते। खग मृग सुर नर असुर समेते—तुलसी (रा० च० मा० १-१७-३)

३. पुनवऊँ प्रथम भरत के चरना, जासु नेम ब्रत जाइ न बरना।—तुलसी (१-१६-३)

४. सो सुधारि हरिजन जिमि लेहीं—तुलसी (रा० च० मा० १-६-३)

"मन्दिर" "महल" का, "मृग" "पशु" का "व्रत" "संकल्प" का, "हरिजन" 'ईश्वर-भक्त' का एक दिन क्या भक्तिकाल तक में पर्याय था परन्तु आज नहीं रहा। समय पा कर अनेक शब्दों के अर्थ छूटते तथा बदलते रहेंगे इस प्रकार आज कुछ ऐसे पर्याय हैं जो कल को पर्याय नहीं रह जाएँगे।

आत्मा, अक्षर, दुर्ग, पंक्ति, पर्वत आदि शब्द संस्कृत में अनेकार्थी थे इस प्रकार इनके कई कई पर्याय वर्ग थे। परन्तु उनके हिन्दी में वे सब अर्थ नहीं लिए जाते बल्कि एक ही एक अर्थ में अब वे रूढ़ हो गए हैं। संस्कृत में आत्मा "शरीर" का, अक्षर "शब्द" का दुर्ग "संकट" का पंक्ति "भूमिका" का, पर्वत "वृक्ष" का भी पर्याय था परन्तु अब अर्थात् हिन्दी में ये पर्याय नहीं हैं।

'सब्जी' हरियाली और तरकारी दोनों का पर्याय था पर अब हरियाली का पर्याय नहीं रह गया है। 'पण्डित' संस्कृत में विद्वान् का पर्याय था। साहित्यिक क्षेत्र में हिन्दी में भी विद्वान् का पर्याय है परन्तु बोल चाल में यह विद्वान् का पर्याय नहीं रह गया। 'टट्टी' अब आश्रय-स्थान के पर्याय रूप में कम ही देखने में आता है। इसी प्रकार खग [सं० ख= आकाश+ग= गमन करनेवाला] पहले सूर्य, चन्द्र, पवन, पक्षी आदि का भी पर्याय[1] था परन्तु अब यह सूर्य, चन्द्र, पवन आदि का पर्याय नहीं रह गया है, मात्र पक्षी का पर्याय रह गया है। फारसी का "मुर्ग" शब्द "पक्षी" का ही वाचक था परन्तु अब यह "पक्षी" का पर्याय नहीं रह गया है।

जीवित भाषा के शब्दों का अर्थ-संकोच तथा अर्थ-विस्तार अर्थात् दूसरे शब्दों में अर्थ परिवर्तन होता ही रहता है। इस विचार से अनेक शब्द जो अब पर्याय हैं आगे चलकर पर्याय नहीं भी रह सकते।

३. नये पर्याय-समूह बनेंगे

"पर्यायों का पर्यायवाची न रह जाना" में हमने देखा है कि आर्थी परिवर्तन के कारण जो शब्द पहले पर्याय थे वे अब पर्याय नहीं रह गए हैं। साथ-साथ वहाँ यह भी इंगित किया है कि जिस शब्द का अर्थ परिवर्तन हुआ है वह अब किसी दूसरे शब्द का पर्याय बन गया है। जैसे—"मुर्ग" पहले "पक्षी" का पर्याय था लेकिन अब "कुक्कट" का पर्याय बन गया है। "गँवार" पहले "ग्रामवासी" का पर्याय था

---

१. खग रवि, खग ससि, खग पवन, खग अम्बुद, खग देव। खग बिहंग, हरि सुतरु तजि भज जड़ सेंवल सेव।

—नन्ददास (नन्ददास ग्रन्थावली पृ० ५७)

लेकिन अब "मूर्ख" का पर्याय हो गया है। "बधाई"[1] अब "मुबारकबाद" का पर्याय बन गया है जब कि पहले वह 'उत्सव' तथा "मंगलचार" का पर्याय था।

यह भी देखने में आता है कि एक शब्द कल तक एक दूसरे शब्द का ही पर्याय था। अब नए अर्थ के उसमें आ मिलने के कारण अब वह एक तीसरे शब्द का भी पर्याय बन बैठा है। 'गोसाईं' मूलतः "गोस्वामी" का ही पर्याय था। अब वह "ईश्वर" का भी पर्याय बन गया। इसी प्रकार "अछूत" पहले 'अस्पृश्य' का पर्याय था पर अब "हरिजन" का पर्याय भी बन गया है। "नक्शा" पहले "चित्र" का ही पर्याय था अब वह "चेहरा-मोहरा" का भी पर्याय हो गया है। "बगल" प्रथमतः "काँख" का पर्याय था अब "पार्श्व" का भी पर्याय हो गया है।

हिन्दी जैसी जीवित भाषा के शब्दों का अर्थ-विकास होता ही रहेगा ऐसी विद्वानों की धारणा है। और जहाँ किसी शब्द ने नया अर्थ ग्रहण किया, बहुत सम्भव है वह किसी और ऐसे शब्द का पर्याय बन जाए जो पहले से उसी अर्थ का वाचक हो।

४. पर्याय मिलकर समस्त पद बनेंगे

पर्यायों के वर्तमान रुख से यह पता चलता है कि पर्यायों का योग भी होता चलेगा। पर्यायों का योग अधिकतर (क) संज्ञा (ख) क्रिया और (ग) विशेषण पर्यायों में ही देखने को आता है। कुछ उदाहरण लीजिए :--

(क) संज्ञा पर्याय जो मिलकर समस्त पद बनाते हैं

आदर	सम्मान
खोज	ढूँढ़
घर	मकान
चिट्ठी	पत्री
टूट	फूट
धन	दौलत
धर	पकड़
नाता	रिश्ता
नौकर	चाकर
माल	असबाब

---

१. नन्द घर बजति आनंद बधाई--सूर

शक्ल	सूरत
सेवा	सुश्रूषा
सोच	विचार
हँसी	दिल्लगी

आदि, आदि

(ख) क्रिया-पर्याय जो मिलकर समस्त पद बनाते हैं :—

उछलना	कूदना
उलटना	पलटना
गढ़ना	छीलना
घुलना	मिलना
चीरना	फाड़ना
चुनना	बिनना
ढकना	तोपना
तोड़ना	फोड़ना
मारना	पीटना

आदि, आदि

(ग) विशेषण पर्याय जो मिलकर समस्त पद बनाते हैं :—

काला	स्याह
गोरा	चिट्टा
भला	चंगा
मैला	कुचैला
साफ	सुथरा

आदि, आदि

विशेषण पर्यायों के अन्तर्गत हम देखते हैं कि कृदन्तों का भी योग होता है। जैसे :—

गिरता	पड़ता
तोड़ता	फोड़ता
मारता	पीटता
पालता	पोसता
सोचता	विचारता

आदि, आदि

अव्यय पर्यायों का योग नहीं होता।

संज्ञा पर्यायों के योग में हम देखते हैं कि एक स्रोत के पर्याय भी सम्मिलित होते हैं और विभिन्न स्रोतों के पर्याय भी सम्मिलित होते हैं। जैसे—

आदर	सम्मान	(संस्कृत–संस्कृत)
लाड़	प्यार	(तद्भव–तद्भव)
माल	असबाब	(अरबी–अरबी)
नौकर	चाकर	(फारसी–फारसी)
नाता	रिश्ता	(तद्भव–फारसी)
सोच	विचार	(तद्भव–संस्कृत)
काम	काज	(फरसी–तद्भव)
घर	मकान	(तद्भव–फारसी)
गली	कूचा	(तद्भव–फारसी)
धन	दौलत	(संस्कृत–अरबी)
शक्ल	सूरत	(अरबी–फारसी)

आदि, अदि

हिन्दी में पर्यायवाचक क्रियाओं की धातुओं के योग से समस्त-पद भी बनते हैं। यह प्रवृत्ति भी जोरदार है। ऐसे समस्त पद संज्ञा कुल भेद के अन्तर्गत आते हैं। जैसे—

उछल	कूद
उलट	पलट
घुल	मिल
चीर	फाड़
टूट	फूट
डाँट	डपट
तोड़	फोड़
मार	पीट
पाल	पोस
सोच	विचार

आदि, आदि

योग का परिणाम

योग के परिणामस्वरूप हम देखते हैं

(क) दोनों की विवक्षाओं का समन्वय होने के फलस्वरूप जोर अधिक आ जाता है। हम कहते हैं कि उसकी 'शक्ल' अच्छी नहीं है या उसकी 'सूरत' अच्छी नहीं है। परन्तु जब कहते हैं कि उसकी 'शक्ल-सूरत' अच्छी नहीं है तो इस कथन में अधिक बल आ जाता है। इसी वर्ग में कुछ और यौगिक पर्याय रखे जा सकते हैं। जैसे–

आदर	सम्मान
चिट्ठी	पत्री
ढक	तोप
धन	दौलत
नाता	रिश्ता
	आदि, आदि

(ख) अर्थ कुछ अवस्थाओं में बदल भी जाता है। जैसे—उनकी सारी 'उछल-कूद' धरी रह गई। कुछ और उदाहरण लीजिए :—

घुल	मिल
तोड़	फोड़
हँसी	दिल्लगी
चीर	फाड़
लुक	छिप
	आदि, आदि

(ग) बहुवचन का भाव भी आता है।

जैसे–(क) उनके घर-मकान हैं।

(ख) नौकर-चाकर क्या काम करेंगे।

साधारणतया यौगिक पर्याय एकवचन में ही रहते हैं। जैसे–(क) 'काम-काज' पूरा हो गया। (ख) 'माल-असबाब' आ जाएगा। (ग) 'लाड़-प्यार' उसे भी बहुत मिला था। आदि, आदि।

५. पर्यायों में विवक्षागत अन्तर प्रतिष्ठित होगा

प्रगति-पथ पर अग्रसर किसी भाषा में सूक्ष्म से सूक्ष्मतर भावों की अभिव्यक्ति करने की समर्थता भी धीरे-धीरे आती है। यह समर्थता उसी अवस्था में दृष्टिगत

होती है जब पर्यायों में विवक्षागत अन्तर प्रतिष्ठित हों। हिन्दी की अभिव्यंजन शक्ति निश्चय ही बढ़ रही है और उसके पर्यायों में स्वाभाविक गति से विवक्षागत अन्तर उपस्थित या सजीव हो रहे हैं। "विश्वास" और "भरोसा" में पहले विवक्षागत अन्तर नहीं था परन्तु अब अन्तर स्पष्ट रूप से दृष्टिगत हो रहा है; जैसे—भटनी मेरे ऊपर **विश्वास** भले ही रखती हो परन्तु **भरोसा** नहीं रखती।[1]—हजारी प्रसाद द्विवेदी। इसी प्रकार 'हीला' और 'बहाना' में पहले विवक्षागत अन्तर नहीं था लेकिन एक शायर के नीचे लिखे शेर से वह अन्तर स्पष्टता प्राप्त कर रहा है। शेर है—

हकीकत में उन्हें मंजूरे खातिर याँ न आना था,
फकत मेंहदी का हीला दर्द सर का इक बहाना था।

'दृष्टान्त' और 'उदाहरण' पर्यायों से विवक्षागत अन्तर प्रतिष्ठित करते हुए रामचन्द्र वर्म्मा लिखते हैं—**दृष्टान्त** बहुधा कृतियों के सम्बन्ध में और आदर्श तथा प्रमाण के रूप में होता है परन्तु उदाहरण प्रायः नैतिक और बौद्धिक तथ्यों, विचारों और भौतिक पदार्थों के सम्बन्ध में और उन्हीं के रूप में स्पष्टीकरण के लिए होता है।[2]

प्रायः पर्यायों में विवक्षागत अन्तर होता सही है परन्तु उसकी उपेक्षा होती रहती है। उसकी ओर ध्यान नहीं दिया जाता। भविष्य में ऐसे अन्तरों की ओर हिन्दी प्रेमी सजग होंगे। "नमूना" और "बानगी" में स्थित विवक्षागत अन्तर का निर्देश करते हुए वर्म्मा जी लिखते हैं—नमूना प्रायः एक ही प्रकार की बहुत सी चीजों में से किसी एक चीज के रूप में होता है और उस वर्ग की सब चीजों का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता है। बानगी तो सदा किसी वस्तु का अंश या खण्ड होती है।[3]

यहाँ हम कुछ ऐसे पर्यायों के विवक्षागत अन्तर की ओर संकेत करते हैं जिनके विवक्षागत अन्तर पर साधारण पाठक तथा श्रोता विशेष ध्यान नहीं देते।

१. "धमकी" में विवक्षा आश्रय की शक्ति से हानि करने की है जब कि उसके पर्याय "धौंस" में आलंबन की दुर्बलता का उसे भान करा के अपना स्वार्थ सिद्ध करने की विवक्षा है।

---

१. बाणभट्ट की आत्मकथा (हजारीप्रसाद द्विवेदी) पृ० १००
२. शब्द साधना पृ० १४९
३. " " पृ० १५५-५६

२. "सन्देह" में विवक्षा किसी आधार या कारण के ज्ञात न हो सकने की है जब कि "संशय" में आधार या कारण को निश्चित न कर सकने की विवक्षा है।

३. "टाँगना" में विवक्षा नीचे से ऊपर की ओर ले जाने की भी है और "लट-करना" में विवक्षा ऊपर से नीचे की ओर ले जाने की।

४. "परतन्त्र" में किसी के शासन में होने की फलतः दूसरे की आज्ञा के अनुसार चलने की विवक्षा है और 'पराधीन' में दूसरे की अधीनता में होने की फलतः दूसरे के अनुग्रह, दया आदि पर निर्भर होने की विवक्षा है।

५. "बहाना" में विवक्षा आधार के निराधार होने की है जब कि "हीला" में आधार के बहुत थोड़ी मात्रा में बाधक होने की विवक्षा है।

६. "सहना" में किसी के निष्क्रिय होने की विवक्षा है जबकि 'झेलना' में सक्रिय होने की विवक्षा है।

६. "कृपा" में विवक्षा कर्त्ता की अनुकूल अन्तरदशा की है "दया" में पात्र की दयनीय स्थिति की विवक्षा है। आदि, आदि।

युग की आवश्यकता देखते हुए हम कह सकते हैं कि वही पर्याय शब्द बचे रह सकते हैं जिनमें विवक्षागत अन्तर है अथवा ला दिया जाएगा। विवक्षागत अन्तर के फलस्वरूप पर्याय वास्तव में स्वतन्त्र शब्द बन जाएँगे। उनकी अपनी सत्ता होगी—अभिव्यक्ति में उनकी आवश्यकता होगी जिसे कोई और शब्द पूरा नहीं कर सकेगा।

सातवाँ अध्याय

विवक्षागत अन्तर

प्रौढ़ भाषा का महत्त्व इसी बात में है कि उसका एक-एक शब्द दूसरे शब्दों से कुछ न कुछ भिन्न अर्थ रखता हो। जिन दो या अधिक शब्दों में आर्थी अन्तर होता ही नहीं वे वस्तुतः भाषा पर बोझ होते हैं। परन्तु कुछ अवस्थाओं में विशेषतः भाषा की उच्चतर अवस्था में अधिकतर पर्यायोंमें अन्तर दृष्टिगत होता ही है जिसका अनुमान मुख्यतया विभिन्न वाक्यों में होनेवाली उनकी परिवर्त्यता तथा अपरिवर्त्यता से लगाया जा सकता है। पर्यायों के अर्थों में होनेवाला यही विवक्षागत अन्तर है जो सूक्ष्मतर विचार व्यक्त करता है और भाषा को ओजपूर्ण तथा सौंदर्यमय बनाता है तथा उसे परिपक्वता प्रदान करता है। चिंतन और अभिव्यक्ति में अधिकतम सीमा तक सामीप्य स्थापित करने में पर्यायों का विवक्षागत अन्तर चमत्कारपूर्ण कार्य करता है।

विवक्षागत अन्तर जानने के साधन

पर्यायों का विवक्षागत अन्तर जानने के लिए जो साधन सहायक हो सकते हैं, वे हैं:—

(क) व्युत्पत्ति तथा योगार्थ
(ख) प्रयोग या रूढ़ि
(ग) विपर्याय

अब हम देखेंगे कि ये साधन किस रूप में विवक्षागत अन्तर स्पष्ट करने में सहायक होते हैं।

(क) व्युत्पत्ति और योगार्थ

पर्यायों के रूढ़ अर्थ में विवक्षागत अन्तर ढूँढ़ निकालने का प्रमुख साधन व्युत्पति है। भारोपीय कुल की भारतीय शाखा की भाषाओं और उनमें से भी विशेषकर संस्कृत भाषा के शब्दों के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि वे प्रधानतः "उधाप्र" रूप हैं। यहाँ:—

उ से अभिप्राय उपसर्ग (एक, अधिक अथवा शून्य) से है।

धा से अभिप्राय धातु से है, और

प्र से अभिप्राय प्रत्यय (एक या अधिक) से है।

संस्कृत भाषा में उपसर्ग, धातुओं और प्रत्ययों के कुछ निश्चित अर्थ माने गए हैं। इस प्रकार संस्कृत शब्दों के अर्थ के सम्बन्ध में सामान्यतः निम्नलिखित सूत्र दिये जा सकते हैं:—

(१) धा+प्र

(उदा०—दर्शन, रमण, यज्ञ, श्लेष)

(२) धा+प्र+प्र

(उदा०—चर्व्य, मारण, मोहन, मोहित, जननी, धात्री)

(३) उ+धा+प्र

(उदा०—अनुराग, अपकार, उपक्रम, परिवहन, प्रबुद्ध)

(४) उ+धा+प्र+प्र

(उदा०—अनुसन्धान, अभीप्सित, उन्मादन, विजिगीषा, विज्ञप्ति)

(५) उ+उ+धा+प्र

(उदा०—निराकरण, व्याकुल, व्यवच्छेद, व्यवहार, व्यापार)

(६) उ+उ+धा+प्र+प्र

(उदा०—अप्रतारण, अनिमेष, अव्यवहित, निर्विकल्प)

(७) ऐसे शब्द जिनमें दो से अधिक उपसर्ग या प्रत्यय अथवा एक से अधिक धातुएँ होती हैं उनके सूत्र भी उक्त सूत्रों के आधार पर बनाए जा सकते हैं।

इस प्रकार के सूत्रों से हमें हिन्दी में प्रचलित संस्कृत शब्दों के व्युत्पत्यार्थ का पता चल जाता है। उदाहरण के लिए आहार और भोजन शब्द लीजिए। इन दोनों के सम्बन्ध में सूत्र इस प्रकार बनाए जा सकते हैं:—

आहार

=उ (अ)+धा (अ)+प्र (अ)

आ+हृ+घञ्—उधाप्र^अ

यहाँ

आ उपसर्ग का अर्थ है—समीप

हृ धातु का अर्थ है—ले जाना

घञ् (अ) भाव (भावे) का सूचक प्रत्यय हैं। अ=अर्थ।

उधाप्र^अ =आ+हृ+घञ्=जिसे समीप लाया जाए।

भोजन

धा (अ)+प्र (अ)

भुज्+ल्युट्—धाप्र$^{\text{अ}}$

यहाँ

भुज् धातु का अर्थ है—भक्षण करना।

ल्युट् (अन) भाव (भावे) का सूचक प्रत्यय है।

धाप्र$^{\text{अ}}$=भुज्+अन=जिसका भक्षण किया जाय।

आहार और भोजन में सामान्यतया अन्तर दृष्टिगत नहीं होता। किन्तु व्युत्पत्यर्थ हमें 'आहार' और 'भोजन' में होनेवाले विवक्षागत अन्तर का निर्देश करने में समर्थ है। भोजन में उसके भक्ष्य रूप में होने की विवक्षा है। उदा०—अन्न सो जोई जोई भोजन करई।[१] परन्तु 'आहार' में किसी के सामने ले जाने की विवक्षा है; जैसे—सिंह के आहार के लिए गीदड़ एक हिरन को बहका कर लाया।

'देह' और 'शरीर' पर विचार कीजिए। इनके सूत्र इस प्रकार होंगे:—

(क) देह

दिह्+घञ्=धाप्र$^{\text{अ}}$

यहाँ

दिह् धातु का अर्थ है—बढ़ना।

घञ् (अ) भाव (भावे) का सूचक प्रत्यय।

देह=धाप्र$^{\text{अ}}$=जो बढ़ता हो।

(ख) शरीर

शृ+ईरन्=धाप्र$^{\text{अ}}$

यहाँ

शृ धातु का अर्थ है=विनष्ट होना।

ईरन् (अ) भावे का सूचक प्रत्यय

शरीर=धाप्र$^{\text{अ}}$=जो विनष्ट होता हो।

प्रयोग में 'देह' और 'शरीर' जीवों के भौतिक ढाँचे के लिए आते हैं। पर विवक्षा की दृष्टि से हम कह सकते हैं कि 'देह' में बढ़ने अर्थात् फलने-फूलने तथा हृष्टपुष्ट होने की विवक्षा है। जैसे—

---

१. राम चरित मानस—१.१६७.६ (गीता प्रेस)

छुटी न सिसुता की झलक झलक्यों जोबनु अंग।
दीपति देह दुहून मिलि दिपति ताफ्ता रंग।।[1]

बिहारी

और शरीर में क्षीण होने की विवक्षा है।

उदा०—कोटिन्ह गहि शरीर सन मर्दा।[2]—तुलसी

व्युत्पत्ति की दृष्टि से निकले हुए उक्त विवक्षागत अन्तर के आधार पर 'देह' का प्रयोग हृष्ट-पुष्ट होने की विवक्षा सूचित करने तथा 'शरीर' का प्रयोग क्षीणता सूचित करने के लिए कुछ विशिष्ट अवसरों पर किया जा सकता है।

इसी प्रकार "पर्याप्ति" का व्युत्पत्यार्थ है—जो अच्छी या अधिक मात्रा में प्राप्त हुआ हो। और "यथेष्ट" का व्युत्यपत्यार्थ है–जितना इष्ट हो। पर्याप्ति में इस दृष्टि से अधिकता या बहुलता की विशेषतः आवश्यकता के अनुरूप या बराबर होने की विवक्षा प्रधान है और यथेष्ट में मन की मरजी के अनुसार अभीष्ट या वांछित होने की विवक्षा है। कुछ अन्य ऐसे पर्याय जिनका व्युत्पत्यार्थ से विवक्षागत अन्तर जान सकते हैं, वे हैं—

अनुरक्त	आसक्त
अतुल्य	अनुपम
आधार	अवलम्ब
कृतकार्य	सफल
योग्य	समर्थ

आदि

ऊपर जिन पर्यायों का उल्लेख हुआ है उनके रूढ़ अर्थ वस्तुतः अपने व्युत्पत्यार्थ से अधिक दूर नहीं हैं। परन्तु जिन पर्यायों के रूढ़ार्थ उनके व्युत्पत्यार्थ से दूर हो जाते हैं उनमें भी कुछ अवसरों पर उनके व्युत्पत्यार्थ के आधार पर विवक्षागत अन्तर स्थापित किया जाता है या किया जा सकता है। ऐसे शब्दों के अर्थ के सम्बन्ध में सूत्र होगा।

$= उधाप्र^{इ}$

जबकि इ संकेत चिह्न व्युत्पत्यार्थ से भिन्न रूढ़ार्थ को सूचित करता है।

---

१. बिहारी रत्नाकर—७० दोहा
२. राम चरित मानस—६-६६-२

व्रत =धाप्र[अ]

धाप्र अनाहार रहने की स्थिति

उपवास = उधाप्र

=उधाप्र अनाहार रहने की स्थिति

परन्तु इन दोनों के अर्थ में विवक्षागत अन्तर व्रत के 'शुचिता' के लिए प्रतिज्ञा-पूर्वक किए जाने वाले कृत्य के आधार पर जाना जा सकता है। व्रत वह अनाहार है जो शुचिता के उद्देश्य से तथा प्रतिज्ञापूर्वक किया जाता हो। उपवास शुचिता या श्रद्धा निमित्त नहीं भी हो सकता। भोजन के न मिलने पर अर्थात् विवशतावश भी उपवास हो सकता है।

'पुरस्कार' और 'पारितोषिक' कृतकार्य या सफल व्यक्ति को दिए जानेवाले धन के अर्थ में प्रचलित हैं।

पुरस्कार	धाप्र[अ]	आगे करना
	उधाप्र[इ]	इनाम
पारितोषिक	उधप्र[अ]	संतुष्ट करनेवाला
	उधाप्र[इ]	इनाम।

अब पुरस्कार और पारितोषिक के रूढ़ अर्थों में उनके व्युत्पत्यार्थ के आधार पर अन्तर जान सकते हैं। 'पुरस्कार' में विवक्षा है आगे बढ़ाने या बढ़ावा देने की। 'पारितोषिक' में विवक्षा है—संतुष्ट करने की। अर्थात् 'पारितोषिक' संतोष और प्रसन्नता के लिए दिया जाता है और 'पुरस्कार' प्रोत्साहित करने या बढ़ावा देने के लिए।

कुछ और ऐसे पर्यायों के उदाहरण लीजिए जिनमें से किसी एक या दोनों के रूढ़ अर्थ में उनके व्युत्पत्यार्थ के आधार पर होनेवाली विवक्षा का पता लगा सकते हैं।

चाटुकार	प्रियम्वद
विरुद्ध	प्रतिकूल
वैर	शत्रुता
शक्ति	बल
हठात्	बलात्

आदि-आदि

संस्कृत के ऐसे पर्याय जिनके रूढ़ार्थ में व्युत्पत्यार्थ की सहायता से विवक्षागत अन्तर नहीं जाना जा सकता उनका उल्लेख 'प्रयोग' तथा 'विपर्याय' में किया जाएगा।

जब किसी शब्द का कोई पर्याय नहिक (Negative) अथवा सहिक (Positive) भाव का सूचक हो तो उसकी विवक्षा का पता उसके अर्थ से चल जाता है। 'अनुपम' में उपमान रहित होने की विवक्षा है और 'बे-जोड़' में जोड़ के न होने की विवक्षा है।

अधूरा	अपूर्ण
चल	अस्थिर
सम्पूर्ण	अखण्ड
स्वच्छ	निर्मल
स्वस्थ	नीरोग

आदि

ऐसे ही पर्याय हैं जिनकी विवक्षाएँ उनके योगार्थ से ज्ञात हो जाती हैं।

तद्भव पर्याय

तद्भव पर्यायों के विवक्षा-सम्बन्धी अन्तर भी उनके मूल तत्सम रूपों से जाने जा सकते हैं। "किस्त" का तद्भव पर्याय है "खेप"। खेप संस्कृत क्षेप (फेंकना) का विकृत रूप है। इस प्रकार खेप में 'फेंकना' और फलतः फेंकने के उद्देश्य से उठाकर ढोने की विवक्षा है। जैसे—(क) कुम्हार दो खेप मिट्टी ले गया है। अथवा (ख) रामू तीन खेप ईंटें लाया है। "किस्त" में फेंकने या ढोने की विवक्षा नहीं है।

'व्रण' का तद्भव पर्याय 'घाव' है। घाव संस्कृत घात से बना है। 'घाव' में किसी प्रकार के आघात के फलस्वरूप उत्पन्न होने की विवक्षा है। जैसे—चलती गाड़ी से गिरने पर उसके सिर में घाव हो गया है। परन्तु 'व्रण' आघात से ही हो ऐसी बात नहीं है। शय्याव्रण बिना किसी प्रकार के आघात के ही होता है।

'प्रियतम' का एक तद्भव पर्याय 'साजन' भी है। साजन संस्कृत 'सज्जन' का परिवर्तित रूप है। इस दृष्टि से 'साजन' में सज्जनता की विवक्षा है जबकि प्रियतम में सबसे अधिक प्यारा होने की।

ऐसे ही अनेक तद्भव पर्याय भी देखने में आते हैं; जैसे--

ईर्ष्या	डाह	(सं० दाह)
उपदेश	सीख	(शिक्षा)
उपाय	ब्योंत	(व्यवस्था)
जाँच	पड़ताल	(परितोलन)
मिन्नत	मनुहार	(सं० मान+हर)
रोना	बिलखना	(सं. विकल)
विष	माहुर	(सं० मथुर)

किसी शब्द के नहिक अर्थ-सूचक पर्याय का अर्थ या उसके योगार्थ से स्पष्ट हो जाता है। 'पार्थक्य' का पर्याय है 'अलगाव'। 'अलगव' नहिक अर्थ सूचक शब्द है। 'अलगाव' में लगाव न रह जाने की विवक्षा उसके नहिक अर्थ से व्यक्त होता है। 'बहु-मूल्य' का योगार्थ है जिसका मूल्य बहुत अधिक हो और 'अनमोल' का योगार्थ है जिसका मूल्य न लग सके। 'खटपट' में झगड़ा होते रहने की विवक्षा है। 'अन-बन' में न बनने की विवक्षा है। ऐसे ही नहिक अर्थ सूचित करनेवाले पर्याय ये हैं जिनका सही अर्थ उनके योगार्थ से जाना तथा लगाया जा सकता है।

दृढ़	अटूट
पक्का	अटल
बुराई	अन-भल
बेडौल	अनगढ़
हर्ज	अकाज

आदि, आदि

ऐसे भी तद्भव पर्याय हैं जिनकी भिन्न विवक्षाएँ उनके योगार्थ से नहीं जानी जा सकतीं। ऐसे पर्यायों की आर्थी विवक्षा कुछ अवस्थाओं में प्रयोगों से जानी जा सकती है। इस विषय का विचार 'प्रयोग या रूढ़ि' में किया जाएगा।

विदेशी पर्याय

विदेशी पर्यायों की विवक्षा जानने में भी उनका व्युत्पत्यार्थ, योगार्थ या मूल अर्थ बहुत अधिक सहायक होता है। उदाहरण के लिए 'आविष्कार' का पर्याय 'ईजाद' (अरबी) लिया जा सकता है। ईजाद अरबी जिद (प्रयत्न करना, ठीक करना) या जिद्द (नयापन, नवीनता) से बना है जिसका योगार्थ है—नई बात पैदा करना। आविष्कार का व्युत्पत्यार्थ है-प्रकाश में लाने का काम। प्र कार सद

'ईजाद' में विवक्षा है उत्पन्न होने की या नया होने की और 'आविष्कार' में विवक्षा है फिर से प्रकाश में लाने की। इस दृष्टि से 'ईजाद' और 'आविष्कार' दोनों क्रमात् अँगरेजी के invention और discovery पर्यायों के तदर्थी हो सकते हैं।[1]

'वेश्या' का अरबी पर्याय है—तवायफ। 'तवायफ' अरबी तायफा का बहुवचन रूप है जिसका अर्थ है व्यक्तियों का दल विशेषत: गाने-बजानेवालों का दल। जिस प्रकार 'वेश्या' में वेश बनाकर रहने की विवक्षा है उसी प्रकार 'तवायफ' में गाने-बजाने तथा मंडली के साथ रहने की विवक्षा है।

कुछ और ऐसे विदेशी पर्यायों की सूची देखिए:—

धर्मयुद्ध (धर्मयुद्ध में विवक्षा है अपने धर्म की रक्षा के लिए लड़ने की)	जिहाद (मूल अर्थ है—काफिरों से लड़ना; इस में विवक्षा है अन्य धर्मावलम्बियों से लड़ने की।)
भला	शरीफ (अरबी—शरफ=बड़प्पन, शरीफ में बड़प्पन की भी विवक्षा है।)
भिखमंगा	फकीर (अरबी फ़क्र= गरीब; फकीर में गरीब होने की भी विवक्षा है।)
विरुद्ध	मुखालिफ (अरबी खिलाफ[2] से, इस; प्रकार मुखालिफ में मेल न खाने की विवक्षा है।)

---

१. जब हम अँगरेजी के Colombus discovered America and Marconi invented Radio. सरीखे वाक्य का ठीक अनुवाद तभी हो सकता है जब हम discovery तथा invention के लिए हिन्दी तदर्थी निश्चित कर लें।

२. खिलाफ का मूल अर्थ है—मेल न खाने वाला।

बहाना	हीला (अरबी हील = छल; हीला में छल[1] की विवक्षा भी है।)

उक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि अनेक संस्कृत तद्भव तथा विदेशी पर्यायों का विवक्षागत अन्तर प्रदर्शित करने में व्युत्पत्यार्थ तथा योगार्थ समर्थ है। परन्तु ऐसे संस्कृत तथा अन्य पर्याय भी हैं जिनमें व्युत्पत्यार्थ या योगार्थ भिन्न नहीं होते; जैसे—

उक्त	कथित
आदर	सम्मान
कोप	क्रोध
ज्ञान	बोध
मानव	मनुष्य

आदि, आदि

ऐसे ही तद्भव तथा विदेशी पर्याय हैं जिनका व्युत्पत्ति से विवक्षागत अन्तर नहीं जाना जा सकता। ऐसे पर्यायों का विवक्षागत अन्तर अधिकारी विद्वानों के प्रयोगों से कुछ अवस्थाओं में जाना जा सकता है।

(ख) प्रयोग या रूढ़ि

पर्यायों के विवक्षागत अन्तर जानने का एक मुख्य आधार प्रयोग या रूढ़ि भी है। प्रयोगों के आधार पर ही हम सही ढंग से पर्यायों का आर्थी विश्लेषण करने में समर्थ होते हैं। किसी पर्याय माला के शब्दों के प्रयोग अधिकारी विद्वानों की कृतियों से ढूँढ़ निकालने पर हम सहज में इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अमुक अमुक अवसरों पर पर्यायों के प्रयोग समान रूप से होते हैं और अमुक अमुक अवसरों पर एक का दूसरे के स्थान पर प्रयोग नहीं हो सकता। जिन स्थानों पर एक पर्याय का प्रयोग दूसरे के स्थान पर नहीं हो सकता वहाँ सूक्ष्म विचार करने से उसके कारण का पता लगाया जा सकता है और यह स्थिर किया जा सकता है कि कौन सी ऐसी विवक्षा है जो पर्यायों में समान नहीं है।

उदाहरण के लिए "विश्वास" और "भरोसा" ये दो पर्याय शब्द लीजिए। साधारणतः इनका प्रयोग बोलचाल और साहित्य दोनों में समान रूप से होता है।

---

१. हकीकत में उन्हें मन्जूरे खातिर याँ न आना था,
फ़क़त मेंहदी का हीला दर्द सर का इक बहाना था।

जिनसे उनके विवक्षागत अन्तर का भान नहीं हो पाता। इसलिए ऐसे प्रयोगों की आवश्यकता थी जहाँ एक दूसरे का प्रयोग न हो सके और इस प्रकार उनमें होनेवाला अर्थी अन्तर दृष्टिगोचर हो सके। निम्नलिखित उदाहरण लिए जा सकते हैं:—

(क) हमें अपने विश्वास की छाया ही दूसरों में दिखाई पड़ने लगती है।[१]

—महादेवी वर्मा

(ख) यही कारण था कि मैंने अर्द्धशेष बोतल पर अपनी मुक्ति का भरोसा किया था।[२]—इलाचन्द्र जोशी

(क) वाक्य में "विश्वास" के स्थान पर "भरोसा" और (ख) वाक्य में "भरोसा" के स्थान पर "विश्वास" का प्रयोग सम्भव नहीं है। वस्तुतः "विश्वास" और "भरोसा" पर्याय शब्दों का सामान्य अर्थ है—ऐसी अनुभूतिजन्य धारणा जिसके फलस्वरूप हम कोई तत्त्व सत्य मानते हैं। यदि विचारपूर्वक देखा जाए तो यह कहा जा सकता है कि जिन तथ्यों को ये शब्द सत्य मानते हैं उन्हीं में भिन्नता है। विश्वास किसी के अस्तित्व या सत्ता पर होता है, "भरोसा" किसी के सहायक होने की समर्थता अथवा सम्भावना पर होता है। किसी के सत्य कथन पर विश्वास किया जाता है और अपने वचन पर दृढ़ रहनेवाले पर भरोसा किया जाता है। यह बात निम्नलिखित उदाहरण से अधिक स्पष्ट हो जाएगी—भट्टिनी मेरे ऊपर **विश्वास** भले ही रखती हो परन्तु **भरोसा** नहीं रखती।[३]—हजारीप्रसाद द्विवेदी।

अवस्था, स्थिति और दशा ये तीन पर्याय लीजिए। इनका सामान्य अर्थ है—समय-विशेष में किसी के अस्तित्व का होनेवाला स्वरूप। इनका वर्तमान और प्रस्तुत अवस्था के लिए प्रयोग समान रूप से होता है।[४]

इनके ऐसे प्रयोग देखें जिनमें पारस्परिक विभिन्नता है।

(क) दीदी निश्चल समाधि की अवस्था में बैठी थी।[५]

—हजारीप्रसाद द्विवेदी

---

१. शृंखला की कड़ियाँ (महादेवी वर्मा) पृ० १२६

२. पर्दे की रानी (इलाचन्द्र जोशी) पृ० ९२

३. बाणभट्ट की आत्मकथा (हजारीप्रसाद द्विवेदी) पृ० १००

४. जैसे—देश की आर्थिक दशा अच्छी है।
—देश की आर्थिक स्थिति अच्छी है।
—देश की आर्थिक अवस्था अच्छी है।

५. बाणभट्ट की आत्मकथा (हजारीप्रसाद द्विवेदी) पृ० ७

(ख) सद्विचार के बिना मनुष्य की स्थिति नहीं।[१]

—जयशंकर 'प्रसाद'

(ग) माली कुछ दूर पर खड़ा हुआ स्तब्ध होकर पथिक की दशा देख रहा था।[२]—महाराजकुमार रघुवीर सिंह

उक्त प्रयोगों के आधार पर पर्याय शब्दों में जो विवक्षागत अन्तर मिलते हैं वे इस प्रकार हैं। "दशा" के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि वह प्रायः खराब या बुरी स्थिति की सूचक होती है। "रोगी की दशा पल में तोला और पल में मासा", "ग्रह दशा" आदि प्रयोग भी इस तथ्य के पोषक हैं। "स्थिति" बिलकुल सादा शब्द है और इसमें किसी विशिष्ट रूप में वर्तमान रहने की विवक्षा है और 'अवस्था' में किसी विशिष्ट अवसर पर किसी विशिष्ट रूप या मुद्रा में होने की विवक्षा है।

नीचे लिखे वाक्यों में दान, उपहार और भेंट की विवक्षाओं पर ध्यान दीजिए :—

(क) अकिंचनता सामाजिक अवस्था से सम्बन्ध रखती है, रूप प्रकृति का दान है और नाम माता पिता का उपहार कहा जाएगा।[३]—महादेवी वर्म्मा

(ख) यहाँ सैकड़ों ललनाएँ मनुष्य की पशुता को भेंट चढ़ाई गई हैं।[४]

—हजारीप्रसाद द्विवेदी

उक्त वाक्यों को सूक्ष्म दृष्टि से देखते हुए हम कह सकते हैं कि स्वेच्छा से तथा किसी प्रतिफल की कामना किए बिना किसी को कुछ देने की क्रिया और साथ ही दी जानेवाली वस्तु भी 'दान' कहलाती है। प्रसन्नता या स्नेहपूर्वक स्मृति के रूप में किसी को दी जानेवाली वस्तु उपहार कही जाती है और पूर्ण उपयोग या उपभोग के लिए किसी को पूज्य, श्रद्धावान् अथवा उपयुक्त पात्र समझकर अर्पित की जानेवाली वस्तु 'भेंट' कहलाती है।

पर्यायों के प्रयोग यदि एक ही लेखक के मिलें तो और भी अच्छा है। कारण यह है कि लेखक उन्हें अपनी मानस तुला पर विवक्षा के अनुरूप उचित स्थान देता है। वह यह समझता है कि अमुक अवस्था या प्रसंग में अमुक शब्द और अमुक अवस्था या प्रसंग में उस का अमुक पर्याय ही शोभन हो सकता है। 'कलंक' और 'लांछन' पर्याय लीजिए और महादेवी वर्म्मा के निम्न प्रयोगों पर ध्यान दीजिए।

---

१. कंकाल (जयशंकर 'प्रसाद') पृ० ४०
२. जीवन-धूलि (महाराजकुमार रघुवीर सिंह) पृ० ४८
३. स्मृति की रेखाएँ (महादेवी वर्मा) पृ० १२८-२९
४. बाणभट्ट की आत्मकथा (हजारीप्रसाद द्विवेदी) पृ० २७१

(क) ऐसा विवाह यदि स्त्रीत्व का कलंक न समझा जाए तो और क्या समझा जाए।[१]—महादेवी वर्मा

(ख) उसे यह सुझाव जीवन के निषेध जैसा भी लग सकता है और बर्बरता के लांछन जैसा भी।[२]—महादेवी वर्मा

यदि सूक्ष्म दृष्टि से इन प्रयोगों में पैठें तो 'लांछन' और 'कलंक' का अन्तर स्पष्ट होने लगता है। 'लांछन' मुख्य रूप में उस अवगुण या दोष का परिचायक होता है जो व्यक्ति करता है अथवा जिसका उसपर आरोप होता है। और 'कलंक' मुख्य रूप से उस वस्तु या व्यक्ति की प्रमुखता सूचित करता है जो किसी अवगुण या दोष का आधार या भाजन होता है। लांछन गुण-प्रधान है और कलंक व्यक्ति-प्रधान।

पर्यायों के प्रयोग की उत्कृष्ट स्थिति वह है जब एक ही लेखक के किसी एक ही वाक्य में उन्हें उपयुक्त स्थान मिलता है। ऐसे वाक्यों में पर्यायों का स्वरूप पूर्ण रूपेण निखर उठता है और उनकी अर्थ-छटाएँ स्पष्ट दिखाई देने लगती हैं। निम्नलिखित वाक्य द्रष्टव्य हैं:—

"ज्ञान के वास्तविक अर्थ में ज्ञानी, शिक्षा के सत्य अर्थ में शिक्षित वही व्यक्ति कहा जाएगा जिसने अपनी संकीर्ण सीमा को विस्तृत और संकीर्ण दृष्टिकोण को व्यापक बना लिया हो।[३]—महादेवी वर्मा

"विस्तृत" और "व्यापक" दोनों का मूल अर्थ है—फैला हुआ। उक्त वाक्य से यह सिद्ध हो रहा है कि विस्तृत का प्रयोग मूर्त पदार्थ के प्रसंग में हुआ है और व्यापक का प्रयोग अमूर्त तत्त्व के प्रसंग में हुआ है। इसके अतिरिक्त यह भी कहा जा सकता है कि जो मूर्त पदार्थ होगा वह कितना ही अधिक विस्तृत क्यों न हो उसकी निश्चित सीमा भी अवश्य होगी। परन्तु अमूर्त तत्त्व का निश्चित सीमांकन करना असम्भव और निष्फल प्रयत्न है। इसलिए 'विस्तृत' ससीम होगा और 'व्यापक' असीम।

शौक और लत दोनों में विवक्षागत अन्तर है।

शराब के अतिरिक्त उसे जुए का भी शौक था जो शराब की लत से भी बुरा है।[४]—महादेवी वर्मा

समाज की दृष्टि में कोई हेय काम बराबर करते रहने की रुचि जब स्वभाव

१. शृंखला की कड़ियाँ (महादेवी वर्मा) पृ० ८१
२. क्षणदा (महादेवी वर्मा) पृ० ११२
३. शृंखला की कड़ियाँ (महादेवी वर्मा) पृ० ११९
४. स्मृति की रेखाएँ (महादेवी वर्मा) पृ० १०६

बन जाती है तब उसे 'लत' कहते हैं और प्रायः कोई काम (अच्छा चाहे बुरा) करते रहने की मन में बनी रहनेवाली रुचिपूर्ण भावना ही 'शौक' कहलाती है। जुए का शौक अर्थात् कभी कभी या प्रायः उसका खेला जाना इसलिए शराब की लत से बुरा है कि उसमें सर्वस्व एक ही क्षण में गँवा बैठने की सम्भावना होती है। शराब की लत से भी इतनी बड़ी हानि सम्भव है परन्तु वह कुछ क्षणों में नहीं बल्कि दीर्घकाल में सम्भाव्य है।

एक और पर्याय युग्म लें—सुकुमार और कोमल।

संघर्ष में जो सबल व्यक्ति अपनी रक्षा कर सकता था वही **सुकुमार** संगिनी और **कोमल** शिशु को लेकर दुर्बल हो उठा।[१]—महादेवी वर्मा

'सुकुमार' और 'कोमल' में छूने पर मुलायम तथा प्रिय लगने की विवक्षाएँ समान रूप से हैं। उक्त प्रयोग के आधार पर हम कह सकते हैं कि 'सुकुमार' में सौंदर्यपूर्ण तथा तरुण होने की भी विवक्षा है और 'कोमल' में अपरिपक्व होने की भी विवक्षा है।

प्रयोगों के आधार पर हम यह भी कह सकते हैं कि 'सुकुमार' का प्रयोग प्रायः शरीर तथा उसके अंगों के लिए होता है[२] पर 'कोमल' का प्रयोग मूर्त तथा अमूर्त वस्तुओं के लिए भी होता है।

प्रयोगों के आधार पर हमें 'सम्पूर्ण' और 'समस्त' का विवक्षागत अन्तर भी दृष्टिगत होने लगता है।

संपूर्ण में किसी एक इकाई की पूर्णता की विवक्षा है। जैसे—मेरा सम्पूर्ण शरीर उद्भिन्न केसर की भाँति रोमांचित हो गया।[३] और समस्त में विभिन्न इकाइयों या किसी इकाई के विभिन्न अवयवों या अंगों के समाहार की विवक्षा है; जैसे—मुझे ऐसा लगता है कि मैं ही तेरे समस्त दुःखों का मूल हूँ।[४]

---

१. शृंखला की कड़ियाँ (महादेवी वर्मा) पृ० ३०

२. अरुन बरन तरुनी चरन अँगुली अति सुकुमार।—बिहारी रत्ना० ४१८
छुट छुटावत जगत में सटकार सुकुमार।
मनु बाँधत बेनी बँधे नील छबीले बार॥ बिहारी रत्ना० ५७३
भूषण भारु सम्भारिहैं क्यों इहिं तन सुकुमार॥ बिहारी रत्ना० ३२२
सहज सचिक्कन स्याम रुचि सुचि सुगन्ध सुकुमार।
गनतु न मनु पथु अपथु लखि बिथुरे सुथरे बाल॥ बिहारी रत्ना० ९५

३. हजारीप्रसाद द्विवेदी कृत बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ० २३२

४. वही पृ० ९२

उक्त विवेचन के आधार पर प्रयोगों के द्वारा जो अनेक विवक्षागत स्थितियाँ देखने में आती हैं उनका क्रमिक उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है।

(क) ऐसे पर्याय युग्म जिनमें विवक्षागत अन्तर नहीं होता। जैसे—अल्प और न्यून, मित्र और दोस्त, विजय और जीत, संग और साथ, सोचना और विचारना आदि।

(ख) ऐसे पर्याय जिन में एक या अधिक पारस्परिक विभिन्न विवक्षाएँ हैं। जैसे—टक्कर और भिड़न्त, टाँगना और लटकाना, शौक और लत, सम्पूर्ण और समस्त आदि आदि।

(ग) एक पर्याय तो दूसरे पर्याय के स्थान पर हर जगह प्रयुक्त हो सकता है परन्तु दूसरे का प्रयोग पहले वाले के स्थान पर हर जगह नहीं किया जा सकता। जैसे—प्यार और स्नेह, चुनाव और निर्वाचन, शिकायत और उलाहना, शेखी और डींग, उदाहरण और दृष्टान्त आदि आदि।

(घ) प्रयोगों के आधार पर ही पर्यायों की विवक्षा की अपेक्षाकृत तीव्रता जान सकते हैं। जैसे—दुःख और खेद, व्यथा और पीड़ा, आग्रह और अनुरोध, गरमी और गरमाहट, ठंढ और ठंढक आदि।

(ङ) प्रयोगों के आधार पर हम देखते हैं कि पर्यायों की विवक्षाएँ समान होने पर भी उनके प्रयोग क्षेत्र भिन्न भिन्न हैं। उदाहरण के लिए 'कर्तव्य' और 'कृत्य' शब्द लीजिए। 'कर्तव्य' सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्र का शब्द है और 'कृत्य' धार्मिक क्षेत्र का। 'क्रोध' का प्रयोग प्राणियों के सम्बन्ध में होता है परन्तु 'कोप' का प्रयोग प्राणियों-अप्राणियों दोनों के लिए होता है। इसी प्रकार खरीदार, गाभिन, घर, छिछोरा, छींटा, ढोंग, जच्चा, टंच, ढारस, ढीठ, बोली आदि मुख्य रूप से बोल-चाल के शब्द हैं परन्तु इनके ये पर्याय क्रेता, गर्भिणी, गृह, क्षुद्र, कटाक्ष, आडम्बर, प्रसूता, स्वस्थ, सान्त्वना, धृष्ट, व्यंग्य आदि मुख्यतः साहित्यिक क्षेत्र के शब्द हैं।

अभिलाषी, कामिनी, तिर्यक, मन्मथ, लोलुप, स्पृहा आदि शब्द पद्य साहित्य में विशेष रूप से चलते हैं परन्तु इन के क्रमात् इच्छुक, स्त्री, वक्र, कामदेव, चन्द्रमा, लालची, साध आदि पर्याय गद्य-पद्य दोनों में चलते हैं।

कलंकित, धूर्त, उप-पति, मृत आदि के क्रमात् कलमुँहाँ, छत्तीसा, धगड़ा, निगोड़ा, मूआ आदि ऐसे पर्याय हैं जिन्हें पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ विशेष रूप से प्रयुक्त करती हैं।

कुछ शब्दों के ऐसे पर्याय होते हैं जो विभिन्न क्षेत्रों में पारिभाषिक शब्द होते हैं। जैसे—

"रुपया"	का पर्याय	"बजना"	(दलालों में)
"तीन"	का पर्याय	"इकवाई"	(,, ,,)
"बोली"	का पर्याय	"विभाषा"	(भाषा विज्ञान में)
"चाँदी"	का पर्याय	"उब्बन"	(ठगों में)
"रगड़"	का पर्याय	"संघर्ष"	(व्याकरण में)
"चावल"	का पर्याय	"अक्षत"	(कर्मकाण्ड में)
"चढ़ावा"	का पर्याय	"नैवेद्य"	(देवपूजन में)

आदि, आदि

उक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रयोगों के द्वारा हम पर्यायों में स्थित सूक्ष्म अन्तर जानने में तो समर्थ होते ही हैं साथ ही उनके कार्य-क्षेत्रों के सम्बन्ध में भी किसी निष्कर्ष तक पहुँचते हैं। प्रयोग के अतिरिक्त "व्युत्पत्ति" तथा "विपर्याय" इस सीमा तक पर्यायों के सम्बन्ध में ज्ञातव्य सूचनाएँ नहीं देते।

(ग) विपर्याय

व्युत्पत्ति और प्रयोग के अतिरिक्त विपर्याय (Autonym) भी कुछ अवस्थाओं में पर्यायों के विवक्षागत अन्तर को स्पष्ट करने में सहायक होते हैं। विपर्याय में किसी दूसरे शब्द के विपरीत अर्थ तथा विवक्षाएँ होती हैं। जो विवक्षाएँ किसी पर्याय में हैं उससे विपरीत विवक्षाएँ उस शब्द में होंगी जिसका वह विपर्याय है। विपर्यायों से ज्ञात होनेवाली किसी शब्द की अर्थगत विपरीतता आश्चर्यजनक ढंग से उसकी विवक्षाओं को प्रकाशित करती है।

उदाहरण के लिए **फायदा** और **मुनाफा** ये दो पर्याय लीजिए। व्यापार में होने वाली मूल से अतिरिक्त प्राप्ति के सामान्य अर्थ में ये दोनों चलते हैं। इन दोनों के क्रमात् विपर्याय हैं 'नुकसान' और 'घाटा'। जब कोई चीज़ खो या टूट भी जाती है तो कहा जाता है कि नुकसान हो गया। खो जाने की विवक्षा जिस प्रकार नुकसान में है उसके विपर्याय में इसी के ठीक विपरीत प्राप्त होने की विवक्षा होनी चाहिए। यदि लाटरी में इनाम मिलता है तो उसे फायदा तो कहा जाएगा परन्तु मुनाफा नहीं।

उपकार और **भलाई** पर्याय लीजिए। इन दोनों में हित साधन की विवक्षा समान रूप से विद्यमान है। इनके क्रमात् विपर्याय हैं—अपकार और बुराई। अपकार और बुराई दोनों ऐसे कार्य के समान रूप से सूचक हैं जिससे दूसरों का अहित होता है। **बुराई** "दोष" की भी सूचक है जब कि अपकार दोष का सूचक नहीं है। दोष का विपरीत भाव गुण है। बुराई के विपर्याय **भलाई** में इस प्रकार गुण, विशे-

षता आदि की भी विवक्षा है। जैसे—इस वज्राघात में भी उन्होंने अपनी भलाई समझी।

'ताजा' और **'नया'** का विवक्षागत अन्तर भी उनके विपर्यायों से ही समझा जा सकता है। 'ताजा' का विपर्याय है 'बासी' और 'नया' का विपर्याय है 'पुराना'। 'नया' वह है जो 'पुराना' न हो परन्तु 'ताजा' वह है जो 'बासी 'न हो। ताजी खबर और नई खबर में यह अन्तर स्पष्ट है। ताजी खबर में अभी अभी घटित होने की विवक्षा है जबकि नई खबर के पहले घटित न होने की विवक्षा है।

'अच्छा' और **'ठीक'** में जो अन्तर है वह व्युत्पत्ति तथा प्रयोगों की सहायता से भले ही न जाना जा सके परन्तु उनके "खराब" और "गलत" विपर्यायों के विवक्षागत अन्तर से स्पष्ट हो जाता है। **'नीचे'** और **'तले'** में भी विवक्षागत अन्तर "ऊँचे" और "ऊपर" विपर्यायों के द्वारा जाना जा सकता है।

व्युत्पत्ति, प्रयोगों तथा विपर्यायों के द्वारा पर्यायों के विवक्षागत अन्तर जाने जाते हैं। परन्तु इस प्रकार उपस्थित किए हुए अन्तरों पर मोहर प्रयोग ही लगाते हैं। विचारों की प्रौढ़ता के साथ साथ भाषा की प्रौढ़ता भी बढ़ती है, भाषा अधिक मँजती है और शब्दों का व्यक्तित्व निखरता चलता है।

आठवाँ अध्याय

वाक्यों, मुहावरों आदि में पर्याय-तत्त्व

पर्यायवाचक इकाइयाँ

पर्याय शब्दों पर विचार करते समय हर अध्येता के मन में यह विचार उठना स्वाभाविक ही है कि क्या पर्यायवाचक शब्द ही होते हैं, या वाक्य, वाक्यांश, मुहावरे तथा कहावतें भी पर्यायवाचक हो सकती हैं। तर्क-संगत उत्तर यही प्रतीत होता है कि जब पर्यायवाचकता का आधार अर्थ—मुख्य विवक्षा से युक्त सामान्य अर्थ है, तो पर्यायवाचक जिस प्रकार शब्द हो सकते हैं उसी प्रकार वाक्य भी पर्यायवाचक हो सकते हैं, वाक्यांश भी पर्यायवाचक हो सकते हैं; मुहावरे तथा कहावतें भी पर्यायवाचक हो सकती हैं।

बात भी ठीक है जिस तरह शब्द को इकाई माना जाता है उसी तरह वाक्य आदि को भी इकाई माना जा सकता है। वाक्यपदीय का एक प्रसिद्ध श्लोक है :—

यथा पदे विभज्यन्ते प्रकृति प्रत्ययादयः।
अपोहारस्था वाक्ये पदानानुपवर्णते ॥

अर्थात् वाक्य की सत्ता पदों से पृथक् और स्वतन्त्र है तथा वाक्य के पदों की और पदों के प्रकृति, प्रत्ययों आदि की कोई पृथक् सत्ता नहीं है।

व्यवहार में तो वाक्य ही इकाई माना तथा समझा जाता है न कि शब्द। यह बात नहीं कि स्वतन्त्र शब्द का अर्थ या महत्त्व नहीं होता। अवश्य होता है परन्तु वह विश्लेषण कर्ताओं के लिए होता है। सामान्यतः भाषा-भाषी शब्द मात्र का कुछ भी महत्त्व नहीं आँकते। शब्दों को जो कुछ महत्त्व मिलता है वह वाक्यों में प्रयुक्त होने की अवस्था में ही मिलता है। "तार" शब्द कहने भर से स्पष्ट नहीं होता कि वास्तव में वक्ता का आशय क्या है। उसका आशय धातु के पतले तन्तु से भी हो सकता है, टेलिग्राफ से भी हो सकता है, टेलिग्राम से भी हो सकता है, क्रम, सुभीता आदि से भी हो सकता है। लेखक या वक्ता जो कुछ कहना चाहता है वह वाक्य के रूप में अनेक शब्दों को विशिष्ट क्रम से रखकर कहता है। फलतः वाक्य में अनेक

शब्दों के सामूहिक अर्थ का प्राधान्य होता है। वाक्य की उपमा इस लिए एक ऐसे चित्र से दी जाती है जिसमें अनेक प्रकार की रेखाएँ खिंची और अनेक प्रकार के रंग भरे रहते हैं। अनेक अवयवों वाला होने पर भी जिस प्रकार चित्र एक ही इकाई के रूप में माना जाता है, उसी प्रकार वाक्य भी विभिन्न अवययों से युक्त होने पर भी एक ही इकाई समझा जाता है।

वाक्यों की तरह वाक्यांश,[1] मुहावरा[2], तथा कहावत[3] भी इकाइयाँ ही हैं, क्योंकि यह भी अपने में पूरा अर्थ व्यक्त करती हैं। वाक्य, वाक्यांश, मुहावरे तथा कहावतों की रचना विभिन्न आधारों पर होती है इसलिए इन्हें कुल भेद की दृष्टि से विद्वानों ने अलग अलग वर्गों में रखा है। जिस प्रकार हमने पर्याय शब्दों का समान शब्द-भेद वाला होना आवश्यक माना है उसी प्रकार हम यहाँ भी समान कुल-भेद की दृष्टि से यह स्वीकार कर सकते हैं कि दो या अधिक मुहावरे पर्यायवाची होंगे, दो या अधिक कहावतें पर्यायवाची होंगी, दो या अधिक वाक्य पर्यायवाची होंगे तथा दो या अधिक वाक्यांश पर्याय होंगे। फिर भी यहाँ हम यह अवश्य स्वीकार करते हैं कि जिस प्रकार शब्दों के विभिन्न शब्द-भेद वाले होने पर अर्थगत अन्तर उपस्थित होता है उस तरह का अन्तर मुहावरे-वाक्य, मुहावरे-कहावत, मुहावरे-वाक्यांश, आदि आदि, को परस्पर एक दूसरे का पर्याय मान लेने से उपस्थित नहीं होता। जैसे—

---

१. वाक्य और वाक्यांश का अन्तर बतलाते हुए हिन्दी व्याकरण में लिखा है—वाक्य में एक पूर्ण विचार रहता है परन्तु वाक्यांश में केवल एक या अधिक भावनाएँ रहती हैं। रूप के अनुसार दोनों में यह अन्तर है कि वाक्य में एक क्रिया रहती है परन्तु वाक्यांश में बहुधा कृदन्त या सम्बन्धसूचक अव्यय रहता है; जैसे—काम करना, सबेरे जल्दी उठना, नदी के किनारे, दूर से आया हुआ।

—हिन्दी व्याकरण (कामता प्रसाद गुरु) पृ० ५८५

२. अभिधेयार्थ से भिन्न कोई विशेष अर्थ देनेवाला किसी भाषा के गठे हुए रूढ़ वाक्य, वाक्यांश, अथवा शब्द इत्यादि को मुहावरा कहते हैं।

—डा० ओमप्रकाश गुप्त (मुहावरा-मीमांसा, पृ० ४९)

३. कहावत की परिभाषा प्रमाणिक हिन्दी कोश में इस प्रकार दी गई है—लोक में प्रचलित ऐसा बँधा हुआ चमत्कारपूर्ण वाक्य जिस में कोई अनुभव या तथ्य की बात संक्षेप में कही गई हो।

—प्रमाणिक हिन्दी कोश (द्वितीय संस्करण)।

पलक लगाना	मुहावरा	नींद आना	वाक्यांश
नाम पाना	,,	प्रसिद्ध होना	,,
धूल में मिलना	,,	नष्ट होना	,,
किसी काम में हाथ लगाना	,,	कोई काम आरम्भ करना	,,
हाथों के तोते उड़ना	,,	अचानक कोई दुर्घटना हो जाने पर सन्न हो जाना	वाक्य
मुँह ताकना	,,	आशापूर्वक किसी की ओर देखना।	,,
अपनी नाक कटी तो कटी पराई बदशुगनी तो हो गई।	कहा०	दूसरे को नुकसान पहुँचाने के लिए अपना नुकसान करना।	,,
एक तो कड़वा करेला दूसरे नीम चढ़ा।	,,	एक तो बुरे थे उसपर बुराई के और कारण भी पैदा हो गये।	,,
अण्डा वह भी गन्दा	,,	ऐसी चीज़ जो अपनी किस्म की एक ही हो पर बेकार हो	,,

उक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट ही है कि मुहावरों से जो अर्थ व्यक्त किया जाता है वह कुछ अवसरों पर वाक्यों से और कुछ अवसरों पर वाक्यांशों से भी प्रकट किया जाता है। इस प्रकार हम मुहावरे को वाक्य या वाक्यांश का, कहावत को वाक्य या वाक्यांश का पर्याय मान भी लें तो कोई हर्ज नहीं। कुछ अवसरों पर हम यह भी देखते हैं कि एक वाक्य किसी अनुच्छेद (पैरा) का पर्याय मान लिया जाता है। किसी एक वाक्य और उसकी व्याख्या (जो अनेक वाक्यों में होती है) दोनों एक ही अर्थ के सूचक भी हो सकते हैं। फिर भी हम व्याख्या में अधिक विस्तार पाते हैं और उसमें कुछ ऐसी बातें भी पाते हैं जो व्याख्याकार की मनोदृष्टि या निजी दृष्टिकोण की सूचक होती हैं तथा जिनसे वाक्य के अर्थ से दूर का सम्बन्ध होता है। इस दृष्टि से वाक्य और उसकी व्याख्या को पर्याय नहीं मानना चाहिए। इसी आधार पर सारांश या संक्षिप्त अंश भी अपने मूल अंश (अनुच्छेद, परिच्छेद आदि) का पर्याय नहीं माना जाना चाहिए क्योंकि दोनों में मौलिक अन्तर होता है।

इस प्रकार यह उचित प्रतीत होता है कि हम अपना क्षेत्र पर्याय वाक्यों, पर्याय वाक्यांशों, पर्याय मुहावरों तथा पर्याय कहावतों तक ही सीमित रखें।

पर्याय-वाचकता

सामान्यतः वाक्यों, मुहावरों, वाक्यांशों, आदि पर्यायों में दो पर्यायवाचक स्थितियाँ देखते हैं।

प्रथम स्थिति में हम ऐसे पर्याय रखते हैं जिन के अर्थ समान होते हैं तथा जिनमें विवक्षागत अन्तर नहीं होता है। जैसे—

(क) सबेरा हुआ।
(ख) दिन निकला। } वाक्य पर्याय

(च) उठते बठते।
(छ) बात बात में। } वाक्यांश पर्याय

(ट) दिन चढ़ना।
(ठ) पैर भारी होना। } मुहावरे पर्याय

(त) गधा धोने से बछड़ा नहीं होता।
(थ) नीम न मीठी होय सींचो गुड़ घी से। } पर्याय कहावतें

उक्त पर्यायों में हम देखते हैं कि इन में पर्यायवाचक शब्द प्रयुक्त नहीं हुए हैं फिर भी इनके अर्थों में अन्तर नहीं है। शब्दों के भिन्न अर्थ भी कुछ अवस्थाओं में एक सा अर्थ व्यक्त करने लगते हैं। "सबेरा" न "दिन" का पर्याय है और न "निकलना" ही "होना" का पर्याय है। ऐसी ही स्थिति अन्य सभी उक्त वाक्यों, मुहावरों आदि में आए हुए शब्दों की है। "सबेरा हुआ" और "दिन निकला" वाक्य पर्याय रात के बीतने के बाद वाले प्रकाश के प्रस्फुटित होने के सूचक हैं। "उठते-बैठते" तथा "बात बात में" दोनों वाक्यांश—थोड़ी थोड़ी देर बाद—अर्थ के परिचायक हैं। "दिन चढ़ना" और "पैर भारी होना" पर्याय मुहावरे स्त्री के गर्भवती होने के बोधक हैं। "गधा धोने से बछड़ा नहीं होता" और "नीम न मीठी होय सींचो गुड़ घी से" पर्याय कहावतें किसी के जातिगत स्वभाव या स्वरूप के न बदलने की सूचक होती हैं। ऐसे पर्याय वाक्यों, मुहावरों आदि के कुछ और उदाहरण लीजिए जो बहुत प्रचलित हैं। जैसे—

(क—१) दिन निकल गये।	(ख—१) समय बीत गया।
(क—२) वह नौकरी करता है।	(ख—२) वह सर्विस में है।
(क—३) उनकी मृत्यु हो गई।	(ख—३) उन्होंने शरीर त्याग दिया।
(क—४) आप क्या समझेंगे।	(ख—४) आप कुछ नहीं समझते।

(क–५)	इस निर्धन को धन दें।	(ख–५)	यह निर्धन है इसे धन दीजिए।
			आदि, आदि पर्याय वाक्य
(च–१)	जल्दी ही।	(छ–१)	निकट भविष्य में।
(च–२)	चुकता होना।	(छ–२)	बाकी न रहना।
(च–३)	धीरे धीरे।	(छ–३)	मंद गति से।
(च–४)	बिना कुछ कहे सुने।	(छ–४)	बिना कोई आपत्ति या विरोध किए।
(च–५)	हँसते खेलते।	(६–५)	खुशी खुशी।
			आदि,आदि पर्याय वाक्यांश
(ट–१)	आग पानी का बैर	(ठ–१)	कुत्ते-बिल्ली का बैर
(ट–२)	भेड़ बकरी समझना	(ठ–२)	गाजर मूली समझना
(ट–३)	पूजा करना	(ठ–३)	खबर लेना
(ठ–४)	फाँसी देना ?	(ट–४)	गला काटना[1]
(ट–५)	सिर करना	(ठ–५)	कंघी करना
			आदि, आदि पर्याय मुहावरे
(त–१)	अन्धे पीसें कुत्ते खाएँ	(थ–१)	अन्धा बाँटे जेवरी पाछे बछरा खाए
(त–२)	चोर का भाई गिरहकट	(थ–२)	चोर चोर मौसेरे भाई
(त–३)	बाँझ न जाने प्रसव की पीड़ा	(ध–२)	जिसके पैर न फटी बिवाई वह क्या जाने पीर पराई
(त–४)	जैसा देश वैसा भेस	(थ–४)	जैसी बहे ब्यार पीठ तब तैसी दीजै
(त–५)	नानी खसम करे दोहता चट्टी भरे	(थ–५)	करे कल्लू मरे मल्लू
			आदि, आदि पर्याय कहावतें

उक्त पर्यायों में यह विशेषता भी है कि वे परिवर्त्य हैं।

दूसरी स्थिति के पर्यायों में हम देखते हैं कि उनमें विवक्षागत अन्तर होता है या अर्थ के विचार से एक की अपेक्षा दूसरा अधिक जोरदार होता है।

---

१. जैसे तुमने तो हमें अच्छी फाँसी दी तथा तुमने तो हमारा गला काट लिया।

अब ख कोटि के पर्यायों को लीजिए। दो वाक्य हैं—

(क) उसने चुप्पी साध ली।
(ख) वह निरुत्तर हो गया।

दोनों का सामान्य अर्थ है—वह चुप हो गया। दोनों में विवक्षा समान हैं–न बोलने की। परन्तु (क) वाक्य में एक विवक्षा है जानबूझ कर कुछ न कहने की; जबकि (ख) वाक्य में विवक्षा है– उत्तर न बन पड़ने की। 'उलट-फेर' और 'काया-पलट' पर्याय वाक्यांशों में भी विवक्षागत अन्तर है। यह दोनों बहुत बड़े बड़े परिवर्तन के सूचक हैं। इन दोनों में अन्तर यह है कि 'उलट-फेर' में अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के परिवर्तनों की विवक्षा है। जबकि 'काया-पलट' में अच्छा परिवर्तन होने की ही विवक्षा है। 'उलट-फेर' आंशिक भी हो सकता है परन्तु 'काया-पलट' आमूल और सर्वांश में होगा। 'कलई खुलना' और 'भण्डा फूटना' पर्याय मुहावरों में भी विवक्षागत अन्तर है। 'कलई खुलना' का प्रयोग किसी छोटी-मोटी गुप्त रखी हुई बात का रहस्योद्‌घाटन होने पर होता है, पर "भण्डा फूटना" का प्रयोग किसी बहुत बड़ी मुख्यतः अपराधपूर्ण बात का रहस्योद्‌घाटन होने पर होता है। ऐसे पर्याय वाक्यों, मुहावरों आदि के कुछ और उदाहरण लीजिए जिनमें विवक्षागत अन्तर होता है।

(क-१) वे अर्थशास्त्र के ज्ञाता हैं।	(क-२) वे अर्थशास्त्र के ज्ञान से शून्य नहीं हैं।
(ख-१) वह बोल उठा।	(ख-२) वह बोल पड़ा।
(ग-१) यहाँ शोर मत कीजिए।	(ग-२) यहाँ शोर न करें।
(घ-१) उन्होंने उसकी बहुत सहायता की।	(घ-२) उन्होंने उसके लिए कुछ उठा नहीं रखा।

क-१ में पूर्ण या अधिक ज्ञान की विवक्षा है जबकि क-२ में थोड़े ज्ञान की विवक्षा है।

ख-१. में सहसा बोलने की और तीव्रता से बोलने की विवक्षाएं हैं जबकि ख-२. में मौन भंग करने की विवक्षा है।

ग-१. में आदेश या विधि की विवक्षा है और ग-२ में प्रार्थना-भाव की।

घ-१. में बहुत सहायता करने पर भी कुछ और सहायता करने की अपेक्षा हो सकती है परन्तु घ-२ में घ-१ के "बहुत" के बाद भी जहाँ तक बन पड़ता हो, सहायता करने की विवक्षा है।

(ङ-१) चीर-फाड़ का नाम सुनने पर वह घबराने लगता है। (ङ-२) चीर-फाड़ का नाम सुनने पर उसकी जान निकलने लगती है।

आदि, आदि पर्याय वाक्य

(च-१) इसे छोड़ कर। (च-च) इसके सिवा।

(छ-१) ज्यों त्यों कर के (छ-२) किसी न किसी प्रकार

(ज-ज) आतुर होना (ज-२) जल्दी मचाना

(झ-१) जल्दी से (झ-२) चट-पट

(ञ-१) ठीक ठीक (ञ-२) सच-सच

आदि, आदि पर्याय वाक्यांश

(ट-१) परदा डालना (ट-२) लीपना-पोतना

(ठ-१) साफ करना (ठ-२) सफाया करना

(ड-१) कम सुनना (ड-२) ऊँचा सुनना

(ढ-१) कसर न करना (ढ-२) कुछ उठा न रखना

(ण-१) खा जाना (ण-च) हजम कर लेना

आदि, आदि पर्याय मुहावरे

(त-१) आप डूबे तो जग डूबा (त-२) आप मरे जग परलो

(थ-१) गए थे रोजा छुड़ाने उलटी नमाज गले पड़ी (थ-२) गई माँगने पूत को खो आई भरतार

(द-१) तैराक ही डूबते हैं (द) जो चढ़े गा सो गिरेगा

(ध-१) जिसका खाइए अन्न-पानी उसकी कीजे आबादानी (ध-२) जिसका खाइए उसी का गाइए

ङ-१. की अपेक्षा ङ-२ में घबराहट की तीव्रता अत्यधिक है।

च-१. में विवक्षा है—इसे अलग रखते हुए और च-२ में एक विवक्षा यह भी है—इसके होते हुए भी।

छ-१. में उपेक्षा या हीनता का तत्त्व प्रधान है, छ-२ में प्रयत्न की विवक्षा है।

ज-१. 'आतुर होने' में आतुरता का भाव किसी एक व्यक्ति तक सीमित होता है और 'जल्दी मचाने' का प्रभाव दूसरों पर भी पड़ता है। पहले में प्राप्ति का भाव प्रधान है दूसरे में कार्य की सिद्धी का भाव प्रधान है।

झ-१. की अपेक्षा झ-२ अधिक जोरदार है।

ञ-१. में गलत न होने की तथा ज्यों का त्यों होने की विवक्षा है और दूसरे में असत्य न होने तथा वास्तविक होने की विवक्षा है।

(न-१) आप मियाँ माँगते बाहर खड़े दरवेश। (न-२) नंगा नहाएगा क्या निचोड़ेगा क्या।

आदि, आदि पर्याय कहावतें

प्रायः पर्याय वाक्यों, पर्याय मुहावरों आदि में कुछ न कुछ अर्थगत विशेषता रहती है, यह विशेषता कुछ अवसरों पर विशेष चमत्कारक होती है। वकीलों को तो वाक्यों में स्थित विविध विवक्षागत अन्तरों के लिए वाक्युद्ध तक करना पड़ता है।

उद्‌भव और विकास

यह बात ध्यान रखने योग्य है कि जिस प्रकार दस-दस और पन्द्रह-पन्द्रह शब्द पर्याय होते हैं उस प्रकार दस-दस और पन्द्रह-पन्द्रह पर्याय वाक्य, मुहावरे आदि नहीं मिलते। मुश्किल से एक-दो पर्याय ही मिलते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि भाषा की अभिव्यंजना शक्ति की सबलता तथा अभिव्यक्ति के नए ढंगों के अन्वेषण के साथ साथ इनका जन्म होता है। पहले एक वाक्य, वाक्यांश, मुहावरा या कहावत बनती है। जिस अर्थ को यह वाक्य, वाक्यांश, मुहावरा या कहावत व्यक्त करती है उस अर्थ को दूसरे शब्दों में व्यक्त करने के लिए भाषा का ज्ञान रचना-कौशल तथा सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति की भी आवश्यकता होती है। भाषा के विकास के साथ साथ ऐसे पर्यायों का जन्म होता है।

पर्याय वाक्यों, वाक्यांशों, मुहावरों तथा कहावतों के अस्तित्व ग्रहण करने के कुछ कारण ये हैं:—

१. एक भाषा में दूसरी भाषा से ग्रहण किए जानेवाले पर्याय शब्द भी पर्याय वाक्य आदि बनाने में सहायक होते हैं। किसी वाक्य के एक, दो या सब शब्दों के स्थान पर उनके पर्याय रखने पर बननेवाला नया वाक्य पहले वाक्य का पर्याय बन जाता है। एक वाक्य है—'लड़का जवान हुआ।' अब 'लड़का' तथा 'जवान' के स्थान पर इनके क्रमात् पर्याय 'बालक' और 'युवा' रख दें तो 'बालक युवा हुआ' पहलेवाले वाक्य, 'लड़का जवान हुआ' का पर्याय होगा। पर्यायवाचक शब्दों के परिवर्तन से प्रायः हर वाक्य के कई एक पर्याय वाक्य बनाए जा सकते हैं।

मुहावरों का वैसे तो रूप निश्चित होता है परन्तु हिन्दी में ऐसे मुहावरे यथेष्ट हैं जिनमें पर्यायवाचक शब्द होते हैं। जैसे 'फेरना' और 'मोड़ना' क्रियाएँ पर्याय-वाचक हैं। 'मुँह' शब्द में लगकर दोनों मुहावरे बनाती हैं; जो पर्याय हैं। जैसे—(क) मुँह मोड़ना; और (ख) मुँह फेरना। ऐसे ही कुछ उदाहरण ये भी हैं:—

कमर कसना	कमर बाँधना
जबान बदलना	जबान पलटना
जाल फैलाना	जाल बिछाना
खाक उड़ाना	धूल उड़ाना
जोर डालना	दबाव डालना
मन की मौज	मन की लहर

आदि, आदि

पर्याय शब्दों के परिवर्तन से बननेवाले पर्याय वाक्यांश भी प्रायः मिलते हैं। जैसे—अन्दर-बाहर और बाहर-भीतर; ऊपर-नीचे और तले-ऊपर; इधर-उधर और इस ओर-उस ओर; जीर्ण-शीर्ण और फटा-पुराना; पग पग पर और कदम कदम पर आदि ऐसे ही पर्यायवाचक वाक्यांशों के उदाहरण हैं। हाँ कहावतें ऐसी पर्यायवाचक नहीं मिलतीं जिन में पर्यायवाचक शब्दों को स्थान मिलता हो।

२. रचना प्रकार की विविधता के कारण भी पर्याय देखने में आते हैं।

वैयाकरणों ने रचना के अनुसार वाक्यों के तीन विभेद साधारण, मिश्र और संयुक्त किए हैं। उक्त में कोई दो प्रकार के वाक्यों में एक अर्थ प्रकट किया जा सकता हैं। प्रसंग तथा सुविधानुसार लोग साधारण और मिश्र वाक्यों में कोई बात कहते तथा साधारण और संयुक्त वाक्यों में भी कहते हैं। साधारण और मिश्र पर्याय वाक्यों के उदाहरण लीजिए।

(अ-१) सतर्क ही फायदे में रहता है।	(अ-२) जो सतर्क रहता है वह फायदे में रहता है।
(आ-१) उसने कल आने को कहा है।	(आ-२) उसने कहा है कि मैं कल आऊँगा।
(इ-१) मैं आप को कैसे भूल सकता हूँ।	(इ-२) मैं आप को भूल जाऊँ यह कैसे हो सकता है।
(ई-१) तुम्हें वन में रहना योग्य है।	(ई-२) तुम्हें योग्य है कि वन में रहो।
(उ-१) इस मेले का उद्देश्य व्यापार की वृद्धि करना है।	(उ-२) इस मेले का उद्देश्य है कि व्यापार की वृद्धि हो।

आदि, आदि

अब कुछ साधारण और संयुक्त पर्याय वाक्यों के उदाहरण लीजिए।

(अ-१) उसने घर जाकर पिता जी से निवेदन किया।	(अ-२) वह घर गया और उसने पिता जी से निवेदन किया।

(आ-१) सच्चे आचरण से तुम उन्नति कर सकते हो।	(आ-२) यदि तुम सच्चा आचरण करो तो तुम उन्नति कर सकते हो।
(इ-१) इस निर्धन को धन दीजिए।	(इ-२) वह निर्धन है इसलिए आप इसे धन दीजिए।
(ई-१) मेरे सर्वनाश से वह सुखी है।	(ई-१) मेरा सर्वनाश हुआ है इसी लिए वह सुखी है।
(उ-१) दफ्तर से आकर खाना खाऊँगा।	(उ-२) जब दफ्तर से आऊँगा तब खाना खाऊँगा।

साधारणतया जिन पर्याय शब्दों में विवक्षागत अन्तर होता है उनके वाक्य में परिवर्तन करने पर वाक्य में विवक्षागत अन्तर उपस्थित होता है। अच्छा और भला पर्याय शब्दों में विवक्षागत अन्तर है। इस प्रकार 'वह अच्छा लड़का है' 'और 'वह भला लड़का है' वाक्यों में विवक्षागत अन्तर होगा।

वाच्य के अनुसार तीन प्रकार के वाक्य बनते हैं, ऐसे वाक्यों में विवक्षागत अन्तर होता है। 'मैं पुस्तक पढ़ता हूँ' कर्तृवाच्य प्रयोग है और 'मुझ से पुस्तक पढ़ी जाती है' कर्मणिवाच्य प्रयोग है। पहले वाक्य में रुचि, आवश्यकता आदि की विवक्षा है, दूसरे में 'शक्यता' की विवक्षा है। निम्न पर्याय वाक्य भी ऐसे ही हैं।

कर्तृवाच्य	कर्मणिवाच्य
वह रोटी खाता है।	उससे रोटी खाई जाती है।
वह मुझे देखता है।	उससे तू देखा जाता है।
मैं दूध नहीं पीता।	मुझसे दूध नहीं पिया जाता।
	आदि, आदि

कर्तृवाच्य और भाववाच्य पर्याय वाक्यों में भी विवक्षागत अन्तर होता है। भाववाच्य वाक्यों में कर्मणिवाच्य के वाक्यों जैसी शक्यता की विवक्षा है। जैसे—

कर्तृवाच्य	भाववाच्य
मोहन दौड़ता है।	मोहन से दौड़ा जाता है।
वह चलता है।	उससे चला जाता है।
राम सोता है।	राम से सोया जाता है।
	आदि, आदि

३. वाक्य के सामान्यतः अर्थानुसारी नौ भेद (विधि, निषेध, आज्ञा, निश्चय, प्रश्न, विस्मयादि, सम्भावना, आशंसा, संकेत) किए गए हैं। प्रायः हम देखते हैं कि उक्त में से कोई दो विभेदों द्वारा एक ही अर्थ व्यक्त हो रहा है परन्तु उनमें अपने अर्थानुसारी भेद की विवक्षा रहती है। 'क्या कुत्ते की दुम सीधी हो सकती है' "और" 'कुत्ते की दुम कभी सीधी नहीं हो सकती।' दो वाक्य हैं जिनमें से पहले में प्रश्न सूचक होने की विवक्षा है और दूसरे में निषेध सूचक होने की विवक्षा है। 'मैं क्या जानूँ कि वे किधर गए हैं' और 'मैं नहीं जानता कि वे किधर गए हैं' क्रमात् प्रश्न सूचक और निषेध सूचक विवक्षाओं से युक्त है।

"कैसा आदमी है वह!" "क्या बात है!" "क्यों न हो!" आदि वाक्यों में विस्मयादि बोधक होने की विवक्षा है जबकि इनके क्रमात् "बहुत विचित्र आदमी है।" "बहुत अच्छी बात है।" तथा "अवश्य हो।" वाक्य निश्चयात्मक कथन है।

निम्न पर्याय वाक्यों में निषेध सूचक तथा विधि सूचक विवक्षाएँ हैं।

१. धर्म कार्यों के बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती।	१. धर्म कार्यों से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।
२. बिना तारों के रात शोभा नहीं पाती।	२. तारों से ही रात शोभा पाती है।
३. ऐसा कहना अच्छा नहीं है।	३. ऐसा कहना बुरा है।

आदि, आदि

किसी वाक्य में आए हुए शब्दों का क्रम परिवर्तन करके उसे दूसरे रूपों में भी लिखा जाता है। अक्सर ऐसा होता है कि ऐसे विभिन्न वाक्यों का सामान्य अर्थ तो एक-सा बना रहता है परन्तु फिर भी कुछ अवस्थाओं में उनमें विवक्षागत अन्तर भी आ जाता है। "अच्छी हिन्दी" के निम्न तीन वाक्यों को उद्धृत यहाँ करना संगत प्रतीत हो रहा है।[1]

१. उसने राम को घोड़ा दिया।
२. राम को उसने घोड़ा दिया।
३. घोड़ा उसने राम को दिया॥

उक्त तीनों वाक्यों में सूक्ष्म अन्तर इन शब्दों में स्पष्ट किया गया है—... पहले वाक्य का आशय यह है कि उसने राम को घोड़ा दिया, और कुछ नहीं दिया।

---

१. अच्छी हिन्दी (रामचन्द्र वर्मा) पृ० ५७ दसवाँ संस्करण

परन्तु दूसरे वाक्य में 'राम' पर जोर है और उसका आशय यह है कि राम को ही उसने घोड़ा दिया और किसी को नहीं दिया। तीसरे वाक्य में घोड़े पर जोर है। उसका आशय यह है कि उसने औरों को और जो कुछ दिया हो पर राम को घोड़ा ही दिया।"[१]

सामान्यतः वाक्यों के शब्दों का थोड़ा-बहुत क्रम बदलने से जो उनमें अन्तर उपस्थित होता है उस पर लोग ध्यान नहीं देते और एकार्थी समझते हैं। खैर! फिर भी इतना तो स्पष्ट है ही कि क्रम परिवर्तन के फलस्वरूप भी पर्यायवाचक वाक्य अस्तित्व में आते हैं।

३. भाषा के मँजने-सँवरने, शब्दों के अपनी अपनी प्रकृति के अनुसार विचरण करने तथा अन्य शब्दों से सम्बन्ध स्थापित होने के फलस्वरूप भी हम यह पर्याय देखते हैं। वाक्यांशों तथा मुहावरों में शब्दों का सम्बन्ध विशेष रूप से स्थिर होता है। इसलिए इन्हीं के पर्याय यहाँ नजर आते हैं। 'खाना' और 'भोजन' पर्याय हैं परन्तु 'खाना' के साथ 'खाना' और भोजन के साथ 'करना' लगकर पर्याय वाक्यांश बनाते हैं—'खाना-खाना' और 'भोजन करना'। परन्तु "खाना" के साथ "करना" और "भोजन" के साथ "खाना" नहीं लगता। "खाना" और "करना" पर्याय नहीं है। लेकिन दो विभिन्न शब्दों (पर्यायवाची) में लगकर उन्होंने उन्हें पर्यायवाची वाक्यांश बना दिया। "डींग" और "शेखी" पर्याय हैं। इनमें क्रमात् भिन्न क्रियाएँ "हाँकना" और "बघारना" लगकर उन्हें पर्याय मुहावरे बनाती है अर्थात् "डींग" हाँकना" और "शेखी बघारना"। "हाँकना" और "बघारना" पर्याय क्रियाएँ नहीं हैं। इस प्रकार के पर्याय मुहावरे बहुत मिलते हैं जिनमें भिन्नार्थक शब्द होते हैं। जैसे—

आँतें गले में आना	आँतें मुँह में आना
कमर ठोंकना	पीठ ठोंकना
बाँह पकड़ना	हाथ पकड़ना
आँखें बिछाना	पलकें बिछाना
हवा करना	पंखा करना

आदि, आदि

४. भाषा-भाषियों की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति भी पर्यायों के जन्म का कारण होती हैं। पर्याय कहावतों के सम्बन्ध में तो यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता

---

१. अच्छी हिन्दी (रामचन्द्र वर्मा) पृ० ५७ दसवाँ संस्करण

है कि उनका निर्माण दो विभिन्न घटनाओं, दृश्यों आदि में समानता देखने के फल-स्वरूप ही होता है। "बाँझ न जाने प्रसव की पीड़ा" और "जिसकी न फटे बिवाई वह क्या जाने पीर पराई" इन दोनों कहावतों का अर्थ है—जो भुक्त-भोगी नहीं है वह दूसरे के कष्ट का अनुमान नहीं कर सकता। दो ऐसे विभिन्न पात्रों के निरीक्षण के परिणामस्वरूप ही समाज ने इन दो कहावतों को जन्म दिया है। असतर्क का धन दूसरे खाते हैं, इस अर्थ की अभिव्यक्ति दो अन्धों के कृत्यों में समाज ने देखी है। दो कहावतें बनीं—"अन्धे पीसें कुत्ते खाएँ" और "अन्धरा बाँट जेवरी पाछें बछरा खाए।"

निरीक्षण शक्ति पर्यायवाची मुहावरों के निर्माण में भी सहायक होती है। पशुओं में भेड़-बकरियों और फलों में गाजर-मूलियाँ नगण्य समझी जाती हैं। नगण्यता सूचित करने के लिए 'भेड़-बकरी समझना' और 'गाजर-मूली समझना' पर्याय निरीक्षण के परिणाम स्वरूप ही बने हैं। मुहावरों के सम्बन्ध में यह बात भी ध्यान रखने योग्य है कि इनका जन्म बोल-चाल में होता है तथा जन-समाज मुख्यतः उन उपकरणों, वस्तुओं आदि के आधार पर इनकी सृष्टि करता है जिनका व्यवहार वह प्रायः करता है। स्वाभाविक है कि एक ही सामान्य अर्थवाले मुहावरे विभिन्न क्षेत्रों में काम करने वालों ने अपनी वस्तुओं आदि के आधार पर तथा अपने निरीक्षण के सहारे बनाए। 'भेड़-बकरी समझना' किसी गड़ेरिए की निरीक्षण शक्ति का परिणाम है और "गाजर-मूली समझना" किसी किसान की निरीक्षण शक्ति का परिणाम है। घर-गृहस्थी का मुहावरा है—"ढाई चावल की खिचड़ी अलग पकाना" और राजगीरों आदि का इसी अर्थ में प्रचलित मुहावरा है—"ढाई ईंट की मसजिद अलग बनाना"। चरवाहों का मुहावरा है—"एक लकड़ी से सब को हाँकना" और उसी अर्थ में किसानों का मुहावरा है—"सब धान बाईस पसेरी समझना"। दुकानदारों तथा महाजनों में प्रचलित एक मुहावरा है—"टाट उलटना" और इसी अर्थ में किसानों का मुहावरा है—"बधिया बैठना।"

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पर्याय वाक्यों के निर्माण का मुख्य कारण उनका रचना प्रकार है, पर्याय मुहावरों तथा पर्याय वाक्यांशों के निर्माण का मुख्य कारण भाषा की व्यंजना-शक्ति है, तथा पर्याय कहावतों के निर्माण का कारण सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति है।

पर्यायों का कार्यक्षेत्र

पर्याय वाक्य, पर्याय मुहावरे, पर्याय वाक्यांश तथा पर्याय कहावतों का कार्य-क्षेत्र मुख्यतः बोल-चाल है। ललित साहित्य में पर्याय वाक्य, पर्याय मुहावरे आदि

देखने में आते हैं परन्तु बहुत कम। फिर जिस प्रकार किसी एक ही रचना में पर्याय-शब्दों के पुनः पुनः प्रयोग की आवश्यकता होती है उस प्रकार पर्याय वाक्यों, मुहावरों आदि की पुनरावृत्ति करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। भाव पूर्ण तथा उत्तेजक लेखों तथा भाषणों में कुछ अवसरों पर अवश्य पर्याय-वाक्य देखने में आते हैं क्योंकि सम्बन्धित व्यक्ति अपने पाठकों या श्रोताओं को कोई कार्य करने अथवा किसी बात के लिए उनमें विश्वास भाव लाना चाहता है। "आप हमारे यहाँ पधारें।" तथा "आप सादर निमंत्रित हैं" तथा "यह भी हो सकता है" और "ऐसा होना सम्भव है" पर्याय वाक्य प्रयुक्त होते हुए देखे जाते हैं।

मुहावरों तथा कहावतों का प्रयोग लेखन में कुछ विशिष्ट लेखक ही करते हैं—सब नहीं। उनका प्रयोग भी यदा-कदा ही होता है। सम्भव है किसी एक लेखक की रचना में आए हुए मुहावरों तथा कहावतों में पर्यायवाची मुहावरे या कहावतें मिलें परन्तु विभिन्न लेखकों की कृतियों में ऐसे पर्याय अवश्य मिल जाते हैं। पर्याय वाक्य तथा वाक्यांश तो साहित्य में यथेष्ट मिलते हैं।

परिणति

मुहावरों तथा कहावतों का प्रयोग अब दिनों दिन कम होता चला जा रहा है इसलिए यह स्वाभाविक लक्षण है कि जो थोड़े बहुत पर्याय मुहावरे या पर्याय कहावतें इस समय प्रचलन में हैं भी उनका भी ह्रास हो जाए।

पर्याय वाक्यों और वाक्यांशों की स्थिति पर्याय मुहावरों तथा पर्याय कहावतों की स्थिति से बिलकुल अलग है। शैलीगत विविधता तथा भिन्न भिन्न प्रकार के श्रोताओं तथा पाठकों की सुविधा के लिए लेखक, वक्ता आदि आज जिस प्रकार पर्याय वाक्यों तथा पर्याय वाक्यांशों का प्रयोग करते चल रहे हैं उसी प्रकार आगे भी करेंगे। शैलीगत तथा अभिव्यक्तिगत विविधता नए नए प्रकार के वाक्यों तथा वाक्यांशों की रचना की ओर लेखकों को प्रवृत्त करती रहेंगी। इस प्रकार पर्याय वाक्यों तथा पर्याय वाक्यांशों की तो और भी वृद्धि होगी।

परिशिष्ट (क)

ग्रन्थावली

(क) हिन्दी, संस्कृत

अच्छी हिन्दी (११वाँ संस्करण) —रामचन्द्र वर्म्मा

अपभ्रंश दोहा कोश (हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योग)—नामवर सिंह

अभिधान अनुशीलन (प्रथम संस्करण) —डा० विद्याभूषण

अमर कोश (१९४४) —नारायण राय आचार्य

अर्थ विज्ञान और व्याकरण दर्शन (प्रथम संस्करण) कपिलदेव द्विवेदी

अवधी कोश —रामाज्ञा द्विवेदी

आदर्श हिन्दी संस्कृत कोश —रामस्वरूप

उर्दू-हिन्दी-कोश —उत्तर प्रदेश सूचना विभाग (प्रकाशक)

कंकाल (संव० २०००) —जयशंकर प्रसाद

काव्य लोक (सं० २००१) —रामदहिन मिश्र

केशव कौमुदी (छठा संस्करण) —लाला भगवान दीन

केशवदास (संव० २०१६) —विश्वनाथप्रसाद मिश्र

क्षणदा (संव० २०१३) —महादेवी वर्मा

गंग कवित्त (संव० २०१८) —बटे कृष्ण

गंग कवित्त (संव० २०१८) —बटे कृष्ण

गोदान (प्रथम संस्करण) —प्रेमचन्द्र

गोली (प्रथम संस्करण) —आचार्य चतुरसेन शास्त्री

घनानन्द कवित्त (संव० २०१७) —चंद्रशेखर

चन्दबरदायी और उनका काव्य —विपिन बिहारी द्विवेदी

चिंतामणि (तृतीय संस्करण) —रामचन्द्र शुक्ल

तुलसी शब्द सागर (प्रथम संस्करण) —भोलानाथ तिवारी

दूसरा तार सप्तक (सन् १९५२) —अज्ञेय

नन्ददास ग्रन्थावली (संव० २००६) —व्रजरत्न दास

पद्माकर ग्रन्थावली	(प्रथम संस्करण)	—विश्वनाथप्रसाद मिश्र
पद्मावत	(प्रथम संस्करण)	—वासुदेवशरण अग्रवाल
परती परिकथा	(प्रथम संस्करण)	—फणीश्वर नाथ 'रेणु'
पर्दे की रानी	(तृतीय संस्करण)	—इलाचन्द्र जोशी
प्रसाद काव्य कोश		—सुधाकर पाण्डेय
प्राकृत और उसका साहित्य		—डा० हरदेव बाहरी
प्रामाणिक हिन्दी कोश		—रामचन्द्र वर्मा
बालमुकुन्द गुप्त ग्रन्थावली—सम्पादक		—झाबरमल शर्मा
बृहत् अँगरेजी हिन्दी कोश		—डा० हरदेव बाहरी
बृहत् पर्यायवाची कोश		—भोलानाथ तिवारी
बृहत् हिन्दी कोश	(संव० २००९)	—ज्ञान मण्डल लि०, प्रकाशक
भाषा लोचन	(संव० २०१०)	—सीताराम चतुर्वेदी
मराठी व्युत्पत्ति कोश	(सन् १९४४)	—के० पी० कुलकर्णी
मीराँ माधुरी	(प्रथम संस्करण)	—ब्रजरत्न दास
मुहावरा-मीमांसा		—डा० ओमप्रकाश गुप्त
युग वाणी		—सुमित्रानन्दन पन्त
रहीम रत्नावली		—याज्ञिक
रामचरित मानस		—गीता प्रेस
लुगात किशोरी	(उर्दू)	—१९२६
वाणभट्ट की आत्मकथा	(प्रथम संस्करण)	—हजारीप्रसाद द्विवेदी
विद्यापति	(सन् १९५७)	—शिवप्रसाद सिंह
विराटा की पद्मिनी	(संव० २०१४)	—वृन्दावनलाल वर्मा
वैशाली की नगर वधू	(सन्० १९५५)	—चतुरसेन शास्त्री
शब्द साधना	(सन् १५५)	—रामचन्द्र वर्म्मा
शब्दों का जीवन	(प्रथम संस्करण)	—भोलानाथ तिवारी
श्रृंखला की कड़ियाँ	(तृतीय संस्करण)	—महदेवी वर्मा
शेष स्मृतियाँ	(सन् १९५१)	—रघुवीर सिंह
सन्त कबीर	(चौथा संस्करण)	—रामकुमार वर्मा
साकेत	(प्रथम संस्करण)	—मैथिलीशरण गुप्त
सामान्य भाषा विज्ञान		—डा० बाबू राम सक्सेना
साहित्य कोश	(प्रथम संस्करण)	—डा० धीरेंद्र वर्मा
सूर की भाषा	(प्रथम संस्करण)	—डा० प्रेमनारायण टण्डन

सूर सागर	(सन् १९३४)	नागरी प्रचारिणी सभा
सोना और खून	(प्रथम संस्करण)	चतुरसेन शास्त्री
सोवियत भूमि	(प्रथम संस्करण)	राहुल सांकृत्यायन
स्मृति की रेखाएँ	(छठा संस्करण)	महादेवी वर्म्मा
हल्दी घाटी	(सन् १९४७)	श्यामनारायण पाण्डेय
हिन्दी पर्यायवाची कोश		श्रीकृष्ण शुक्ल
हिन्दी भाषा का इतिहास	(छठा सं०)	धीरेंद्र वर्मा
हिन्दी भाषा का विकास	(तृतीय सं०)	श्यामसुन्दर दास
हिन्दी व्याकरण	(संशोधित संस्करण)	कामताप्रसाद गुरु
हिन्दी शब्द सागर		—नागरी प्रचारिणी सभा

अंग्रेजी

A selection of English Synonyms	–E. J. Whately
A Treatise on Language.	–A. B. Johnson
English Sanskrit Dictionary	–N. Williams
English Synonyms.	–G. F. Graham
Comprehensive English-Hindi Dictionary.	–Raghuvir
Dictionary of English Synonyms.	–George Grabb.
Dictionary of World Literary Terms.	–J. T. Shipley.
Foundations of Language.	–L. H. Gray.
Hindi Semantics.	–H. Bahri.
Hindustani Synonyms.	–J. W. Furrel.
Indo-Aryan & Hindi (1942).	–S. K. Chatterji.
Language.	–L. Bloomfield.
Life of Words.	–A. Darmesteter.
Logic & Grammar.	–O. Jesperson.
Meaning & Change of Meaning.	–G. Stern.
Meaning of Meaning.	–Ogden & Richards.
Nepali Dictionary.	–R. L. Turner.
Shorter Oxford Dictionary.	–W. Little.
Sanskrit English Dictionary.	–M. Williams.
Sanskrit English Dictionary.	–M. S. Aptey.

Synonyms Antonyms & Prepositions. –J. C. Fernald.
Synonyms Discriminated. –C. J. Smith.
Thesaurus of English Words & Phrases. –P. M. Roget.
Webstor's Dictionary of Synonyms.
Webster's New International Dictionary.
Modern Language Notes. –(1944)
Modern Philalogy. –(1927-28, 1929-30)
Philalogical Quarterly –(1925 Vol IV.)
P. M. L. A. –(1949-1951)

परिशिष्ट (ख)

पारिभाषिक शब्द सूची

अर्थ	Meaning
उद्भव	Source
कोटि	Gradation
कोटिकरण	Gradation
गोण	Secondary
तीव्रता	Intensity
नहिक	Negative
परिणति	Fate
परिवर्त्य	Convertible
परिवर्त्यता	Convertibility
पर्याय	Synonym
पर्यायवाचक—वाची	Synonymous
पर्यायवाचकता	Synonymity
भाव	Sense
माता	Group
मुख्य	Primary
विकास	Evolution
विपर्याय	Antonym
विवक्षा	Implication
विवक्षागत	Implied
शब्द-सम्पदा	Vocabulary
समान	Common
सहिक	Positive
सामान्य	General
प्रभेद	Distinction